अङ्ग आगमों के विषयवस्तु-सम्बन्धी उल्लेखों का तुलनात्मक विवेचन

डा० सुदर्शन लाल जैन

भगवान् महावीर ने अपनी दिव्यवाणी द्वारा जिस वस्तु-स्वरूप का प्रतिपादन किया, उसे अत्यन्त निर्मल अन्तःकरण वाले तथा बुद्धिवैभव के धनी गणधरों ने आचाराङ्ग आदि द्वादश अङ्ग-ग्रन्थों के रूप में ग्रथित करके अपने पश्चाद्वर्ती आचार्यों को श्रुत-परम्परा से प्रदान किया।[1] श्रुत की इस अलिखित परम्परा का स्मृति-लोप होने से क्रमशः ह्रास होता गया।

श्वेताम्बर-मान्यतानुसार स्मृति-परम्परा से प्राप्त ये अङ्ग ग्रन्थ देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण की वलभीवाचना (वीर नि० सं ९८०) के समय लिपिबद्ध किए गए। दृष्टिवाद नामक १२वाँ अंग-ग्रन्थ उस समय किसी को याद नहीं था, अतः वह लिपिबद्ध न किया जा सका। इसके पूर्व भी आचार्य स्थूलभद्र द्वारा पाटलिपुत्र (वीर नि० सं० २१९) में तथा आर्य स्कन्दिल द्वारा माथुरी वाचना (वीर नि० ८वीं शताब्दी) में भी इन ११ अङ्ग ग्रन्थों का संकलन किया गया था परन्तु उस समय उन्हें लिपिबद्ध नहीं किया गया था।

दिगम्बर-परम्परा इन वाचनाओं को प्रामाणिक नहीं मानती है। उनके अनुसार वीर नि० सं० ६८३ तक श्रुत-परम्परा चली, जो क्रमशः क्षीण होती गई। अङ्ग-ग्रन्थों के लिपिबद्ध करने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया, फलतः सभी अङ्ग ग्रन्थ लुप्त हो गए। इतना विशेष है कि वे दृष्टिवाद नामक १२वें अङ्गान्तर्गत पूर्वों के अंशांश के ज्ञाताओं द्वारा (वीर नि० ७वीं शताब्दी में) रचित षट्खण्डागम और कषायपाहुड को तथा वीर निर्वाण की १४वीं शती में रचित इनकी धवला और जयधवला टीकाओं को आगम के रूप में मानते हैं।[2]

---

१. भगवान् महावीर के ११ गणधर थे जिन्होंने उनके अर्थरूप उपदेशों को १२ अंग ग्रन्थों के रूप में ग्रथित किया था।

२. आचार्य धरसेन (ई० १-२ शताब्दी, वीर नि० ७वीं शताब्दी) के शिष्य पुष्पदन्त और भूतबलि ने षट्खण्डागम की रचना की। षट्खण्डागम के प्रारम्भ के १७७ सूत्र आचार्य पुष्पदन्त ने और शेष आचार्य भूतबलि ने लिखे। इस ग्रन्थ का आधार द्वितीय अग्रायणी पूर्व के चयनलब्धि नामक अधिकार का चतुर्थ पाहुड 'कर्मप्रकृति' है। कषायपाहुड की रचना धरसेनाचार्य के समकालीन गुणधराचार्य ने ज्ञानप्रवाद नामक ५वें पूर्व की १०वें वस्तु के तीसरे 'पेज्जदोसपाहुड' के आधार पर की। इन दोनों पर क्रमशः 'धवला' और 'जयधवला' नामक टीकाएँ वीरसेनाचार्य ने लिखी हैं। चार विभक्तियों के बाद 'जयधवला' टीका की पूर्णता वीरसेन के शिष्य जिनसेन ने (शक सं० ७५९) की है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बारह अङ्गों के नाम

उभय-परम्परा में मान्य १२ अंग-ग्रन्थों के नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—(१) आचाराङ्ग, (२) सूत्रकृताङ्ग, (३) स्थानाङ्ग, (४) समवायाङ्ग, (५) व्याख्याप्रज्ञप्ति (अपरनाम भगवती[1]), (६) ज्ञाताधर्मकथा (नाथधर्मकथा), (७) उपासकदशा (उपासकाध्ययन), (८) अन्तकृद्दशा (अन्तकृद्दश) (९) अनुत्तरोपपादिकदशा (अनुत्तरौपपादिकदश), (१०) प्रश्नव्याकरण, (११) विपाकसूत्र और (१२) दृष्टिवाद। छठें से नौवें तक के कोष्ठकान्तर्गत नाम दि० परम्परा में प्रचलित हैं।

इन अङ्गों के क्रम में कहीं कोई अन्तर नहीं मिलता है। साधारण नाम-भेद अवश्य पाया जाता है। जैसे[2]—छठें और सातवें अङ्ग का नाम दिगम्बर ग्रन्थों में क्रमशः "नाथधर्मकथा" (णाहधम्मकहा) तथा "उपासकाध्ययन" (उवासयज्झयण) मिलता है। इसी प्रकार पांचवें "व्याख्याप्रज्ञप्ति" का प्राकृत नाम श्वे० ग्रन्थों में "विवाहपन्नत्ती" मिलता है जबकि दि० ग्रन्थों में "वियाहपण्णत्ती" है जो व्याख्याप्रज्ञप्ति के अधिक निकट है। गोम्मटसार जीवकाण्ड में सूत्रकृताङ्ग का प्राकृतनाम "सुद्दयडं" मिलता है जबकि स्थानाङ्ग आदि में "सूयगडो" और धवला आदि में "सूदयदं" मिलता है। तत्त्वार्थाधिगमभाष्य में दृष्टिवाद को "दृष्टिपातः" कहा है जो चिन्त्य है। श्वे० ग्रन्थों में "अन्तकृद्दशा" और "अनुत्तरौपपादिकदशा" के लिए क्रमशः "अन्तगडदसाओ" और "अणुत्तरोववाइअदसाओ" नाम हैं जबकि दि० ग्रन्थों में "अन्तयडदसा" और "अणुत्तरोववादियदसा" नाम मिलते हैं। शेष नामभेद प्राकृत भाषाभेद एवं लिपिप्रमाद के कारण हैं।

अब हम इन अङ्ग ग्रन्थों के विषयवस्तु की निम्न चार आधारों पर समीक्षा करेंगे।

१. श्वे० ग्रन्थों में प्राप्त उल्लेख, (२) दिग० ग्रन्थों में प्राप्त उल्लेख, (३) उपलब्ध अङ्ग आगमों का वर्तमान स्वरूप और (४) तुलनात्मक विवरण। अन्त में समस्त ग्रन्थों की समग्ररूप से समीक्षा करते हुए उपसंहार दिया जाएगा।

१—आचाराङ्ग

(क) श्वेताम्बर ग्रन्थों में अङ्ग ग्रन्थों की विषयवस्तु का उल्लेख—

श्वेताम्बर परम्परा में अंग ग्रन्थों की विषयवस्तु का उल्लेख स्थानाङ्ग, समवायाङ्ग, नन्दी और विधिमार्गप्रपा में मिलता है। अतः यहाँ इन्हीं आधारों पर अङ्ग ग्रन्थों की समीक्षा करेंगे—

१. स्थानाङ्गसूत्र में[3]—आचाराङ्ग की विषयवस्तु की चर्चा करते हुए उसके ब्रह्मचर्य सम्बन्धी ९ अध्ययनों का उल्लेख किया गया है, जिनमें अन्तिम तीन का क्रम है—विमोह, उपधान और महापरिज्ञा। दस दशा के निरूपणप्रसङ्ग में जो आचारदशा के १० अध्ययनों का उल्लेख है, वह आचाराङ्ग से सम्बन्धित न होकर दशाश्रुतस्कन्ध से सम्बन्धित है।[4]

---

१. विवाहपन्नतीए णं भगवतीए चउरासीइं पयसहस्सा पदग्गेणं पण्णत्ता। समवायाङ्ग ८४-३९५

२. स्थानाङ्ग १०-११०; समवायाङ्गसूत्र ५११, ५७, ३००; नन्दी पृ० २८७-२८८; तत्त्वार्थाधिगमभाष्य १.२०; तत्त्वार्थराजवार्तिक १.२०, पृ० ७२; धवला १.१.२, पृ० १००; जयधवला गाथा १, पृ० ७२, गोम्मटसार जीवकाण्ड गाथा ३५६

३. स्थानाङ्ग ९.२

४. स्थानाङ्ग १०.११०, ११५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. **समवायाङ्ग में**[1]—आचाराङ्ग में श्रमण निर्ग्रन्थों के आचार, गोचर, विनय, वैनयिक, स्थान, गमन, चंक्रमण, प्रमाण, योग-योजन, भाषा, समिति, गुप्ति, शय्या, उपधि, भक्त-पान, उद्गम, उत्पादन, एषणा-विशुद्धि, शुद्धाशुद्धग्रहण, व्रत, नियम, तपोपधान इन सबका सुप्रशस्त कथन किया गया है। वह आचार संक्षेप से ५ प्रकार का है—ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार।

अङ्गों के क्रम में यह प्रथम अङ्ग-ग्रन्थ है। इसमें दो श्रुतस्कन्ध हैं, २५ अध्ययन हैं, ८५ उद्देशन काल हैं, ८५ समुद्देशन काल हैं और १८ हजार पद हैं।

परीत (परिमित) वाचनायें हैं, संख्यात अनुयोगद्वार हैं, संख्यात प्रतिपत्तियाँ हैं, संख्यात वेष्टक हैं, संख्यात श्लोक हैं, संख्यात निर्युक्तियाँ हैं, संख्यात अक्षर हैं, अनन्त गम हैं, अनन्त पर्यायें हैं, परिमित त्रस हैं, अनन्त स्थावर हैं, शाश्वत, कृत (अनित्य), निबद्ध (ग्रथित) और निकाचित (प्रतिष्ठित) हैं, जिनप्रज्ञप्त भाव हैं, जिनका सामान्य रूप से और विशेष रूप से प्रतिपादन किया गया है, दर्शाया गया है, निदर्शित किया गया है तथा उपदर्शित किया गया है। आचाराङ्ग के अध्ययन से आत्मा ज्ञाता और विज्ञाता हो जाता है। इस तरह इसमें चरण और करण धर्मों की ही विशेषरूप से प्ररूपणा की गई है।

इस अन्तिम पैराग्राफ की समस्त बातें सभी १२ अङ्गों के सन्दर्भ में एक ही समान कही गई हैं।

समवायाङ्ग के ५७वें समवाय के सन्दर्भ में आचाराङ्ग (९ + १५ = २४ अध्ययन, आचार-चूला छोड़कर), सूत्रकृताङ्ग (२३ अध्ययन) और स्थानाङ्ग (१० अध्ययन) के अध्ययनों की सम्पूर्ण संख्या ५७ बतलाई है।[2] नवम समवाय में आचाराङ्ग के ९ ब्रह्मचर्य अध्ययन गिनाये हैं—शस्त्र-परिज्ञा, लोकविजय, शीतोष्णीय, सम्यक्त्व, अवन्ती, धूत, विमोह, उपधानश्रुत और महा-परिज्ञा।[3] पच्चीसवें समवाय में चूलिका सहित २५ अध्ययन गिनाये हैं।[4]

३. **नन्दीसूत्र में**[5]—आचाराङ्ग में श्रमण निर्ग्रन्थों के आचार, गोचर, विनय, शिक्षा, भाषा, अभाषा, करण, यात्रा, मात्रा (आहार परिमाण) आदि का कथन संक्षेप में है। आचार ५ प्रकार का है—ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपःआचार और वीर्याचार।

अङ्गक्रम और वाचना आदि का समस्त विवेचन समवायाङ्ग की तरह बतलाया है।

४. **विधिमार्गप्रपा में**[6]—आचाराङ्ग के २ श्रुतस्कध बतलाए गए हैं। प्रथम श्रुतस्कन्ध के ९ अध्ययन कहे गए हैं—शस्त्र-परिज्ञा, लोकविजय, शीतोष्णीय, सम्यक्त्व, अवन्ती या लोकसार,

१. समवायाङ्गसूत्र ५१२-५१४

२. तिण्हं गणिपिडगाणं आयारचूलियावज्जाणं सत्तावन्नं अज्झयणा पण्णत्ता। तं जहा आयारे सूयगडे ठाणे। समवायाङ्ग, समवाय ५७ सूत्र ३००।

३. समवायाङ्ग ९ ५३

४. समवायाङ्ग २५.१६८

५. नन्दीसूत्र, सूत्र ४६

६. विधिमार्गप्रपा पृ० ५०-५१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धूत, विमोह, उपधानश्रुत और महापरिज्ञा। इसमें महापरिज्ञा' को विच्छिन्न बतलाया है जिसमें आकाशगामिनी विद्या का वर्णन था। यहाँ यह भी लिखा है कि शीलांकाचार्य ने महापरिज्ञा को आठवाँ और उपधानश्रुत को नवाँ कहा है। द्वितीय श्रुतस्कन्ध की ५ चूलायें बतलाई हैं, जिनका अध्ययनों में विभाजन इस प्रकार किया गया है—**प्रथम चूला** के ७ अध्ययन हैं—पिण्डैषणा, शय्या, ईर्या, भाषा, वस्त्रैषणा, पात्रैषणा और अवग्रह-प्रतिमा (उवग्गहपडिमा)। इनमें कमशः ११,३,३,२,२,२,२ उद्देशक हैं। **द्वितीय चूला** के सात अध्ययन हैं (सत्तसत्तिक्कएहि बीया चूला)—स्थानसत्तिक्कय, निषीधिका-सत्तिक्कय, उच्चारप्रस्रवणसत्तिक्कय, शब्दसत्तिक्कय, रूपसत्तिक्कय, परक्रियासत्तिक्कय और अन्योन्यक्रियासत्तिक्कय। इनके उद्देशक नहीं हैं। **तृतीय चूला** में "भावना" नामक एक ही अध्ययन है। **चतुर्थ चूला** में "विमुक्ति" नामक एक ही अध्ययन है। इस प्रकार द्वितीय श्रुतस्कन्ध में १६ अध्ययन और प्रथम चूला के सात अध्ययनों के २५ उद्देशक हैं, शेष के उद्देशक नहीं हैं। **पंचम चूला** में 'निशीथ' नामक एक ही अध्ययन है। इस चूला का आचाराङ्ग से पृथक् कथन किया गया है। यह चूला अब एक स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप में मान्य है।

(ख) दिगम्बर ग्रन्थों में प्राप्त उल्लेख—

दिगम्बर परम्परा में अङ्ग ग्रन्थों की विषयवस्तु का निरूपण प्रमुख रूप से तत्त्वार्थवार्त्तिक, धवला, जयधवला और अङ्गप्रज्ञप्ति में हुआ है। यथा

१. तत्त्वार्थवार्तिक में[1]—आचाराङ्ग में (मुनि) चर्या का विधान है जो ८ शुद्धि, ५ समिति और ३ गुप्ति रूप है।

२. धवला (षट्खण्डागम-टीका) में[2]—आचाराङ्ग में कैसे चलना चाहिए, कैसे खड़े होना चाहिए, कैसे बैठना चाहिए, कैसे शयन करना चाहिए, कैसे भोजन करना चाहिए और कैसे संभाषण करना चाहिए ? इत्यादि रूप से मुनियों के आचार का कथन किया गया है। इसमें १८ हजार पद हैं।

३. जयधवला (कषायपाहुड–टीका) में[3]—आचाराङ्ग में 'यत्नपूर्वक गमनादि करना चाहिए' इत्यादि रूप से साधुओं क आचार का वर्णन है।

४. अङ्गप्रज्ञप्ति में[4]—आचाराङ्ग में १८ हजार पद हैं। भव्यों के मोक्षपथगमन में कारण-भूत मुनियों के आचार का वर्णन है। धवला और जयधवलावत् कथन है। मुनियों के केशलोंच, अवस्त्र, अस्नान, अदन्तधावन, एकभक्त, स्थितिभोजन आदि का भी उल्लेख है।

(ग) वर्तमान रूप—

उपलब्ध आचाराङ्ग में विशेषरूप से साधुओं के आचार का प्रतिपादन किया गया है। इसके दो श्रुतस्कन्ध हैं—

प्रथम श्रुतस्कन्ध—इसका नाम ब्रह्मचर्य है जिसका अर्थ है "संयम"। यह द्वितीय श्रुतस्कन्ध से प्राचीन है। इसमें ९ अध्ययन हैं—१–शस्त्रपरिज्ञा, २–लोकविजय, ३–शीतोष्णीय, ४–सम्यक्त्व, ५–आवन्ति (यावन्तः) या लोकसार, ६–धूत, ७–महापरिज्ञा, ८–विमोह या विमोक्ष और ९–उप-

१. तत्त्वार्थवार्तिक १.२०, पृ० ७२-७३।
२. धवला १.१.२ पृ० ११०।
३. जयधवला गाथा, १, पृ० १११।
४. अङ्गप्रज्ञप्ति गाथा १५ १९ पृ० २६०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धानश्रुत। कुल मिलाकर इस श्रुतस्कन्ध में ४४ उद्देशक हैं। पहले ५१ उद्देशक थे[1] जिनमें से ७वें महापरिज्ञा के सातों उद्देशकों का लोप माना गया है।

द्वितीय श्रुतस्कन्ध—इसमें चार चूलायें हैं ("निशीथ" नामक पंचम चूला आज आचाराङ्ग से पृथक् ग्रन्थ के रूप में प्रसिद्ध है) जिनका १६ अध्ययनों और २५ उद्देशकों में विभाजन विधिमार्गप्रपा की तरह ही है।

(घ) तुलनात्मक विवरण—

दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों के उल्लेखों से इतना स्पष्ट है कि इसमें साधुओं के आचार का वर्णन था तथा इसकी पद-संख्या १८ हजार थी। उपलब्ध आगम से पद-संख्या का मेल करना कठिन है।

वीरसेनाचार्य ने धवला टीका में तो पद-संख्या का उल्लेख किया है, परन्तु जयधवला में उल्लेख नहीं किया है। आचाराङ्ग की विषयवस्तु के संदर्भ में दिगम्बर ग्रन्थों में केवल सामान्य कथन है जबकि श्वेताम्बर ग्रन्थों में आचाराङ्ग के अध्ययनों आदि का विशेष वर्णन है। स्थानाङ्ग में केवल प्रथम-श्रुतस्कन्ध के ९ अध्ययनों का उल्लेख मिलने से तथा समवायाङ्ग में ब्रह्मचर्य के ९ अध्ययनों का पृथक् उल्लेख होने से प्रथम श्रुतस्कन्ध की प्राचीनता और महत्ता को पुष्टि होती है।

प्रथम श्रुतस्कन्ध के महापरिज्ञा अध्ययन का क्रम स्थानाङ्ग, समवायाङ्ग और विधिमार्गप्रपा में क्रमशः नवमां है, जबकि उपलब्ध आचाराङ्ग में 'महापरिज्ञा' का क्रम सातवां है। शीलांकाचार्य की व्याख्या में 'महापरिज्ञा' को आठवां स्थान दिया गया है।[2] इस तरह क्रम में अन्तर आ गया है। "महापरिज्ञा" का लोप हो गया है, परन्तु उस पर लिखी गई निर्युक्ति उपलब्ध है। निर्युक्ति में आचाराङ्ग के दस पर्यायवाची नाम भी गिनाए हैं—आयार, आचाल, आगाल, आगर, आसास, आयरिस, अंग, आइण्ण, आजाइ और आमोक्ख।[3] 'चूला' शब्द का उल्लेख हमें समवायाङ्ग में मिलता अवश्य है परन्तु वहां उसका स्पष्ट विभाजन नहीं है जैसा कि विधिमार्गप्रपा में मिलता है। समवायाङ्ग के ५७वें समवाय में आचाराङ्ग, सूत्रकृताङ्ग और स्थानाङ्ग के जो ५७ अध्ययन कहे गए हैं उनमें सूत्रकृताङ्ग के २३ और स्थानाङ्ग के १० अध्ययन हैं। इस तरह ३३ अध्ययन निकाल देने पर आचाराङ्ग के २४ अध्ययन शेष रहते हैं। इन २४ अध्ययनों की संगति किस प्रकार बैठाई जाए, यह विवादास्पद ही है। संभवतः विलुप्त 'महापरिज्ञा' को कम कर देने पर प्रथम के ८ अध्ययन और दूसरे के चूला (निशीथ) छोड़कर १६ अध्ययन माने जाने पर २४ अध्ययनों की संगति बैठाई जा सकती है जो एक विकल्प मात्र है। इस पर अन्य दृष्टियों से भी सोचा जा सकता है क्योंकि वहां 'महापरिज्ञा' के लोप का उल्लेख नहीं है।

---

१. नवण्हं बंभचेराणं एकावन्नं उद्देसणकाला पण्णत्ता। समवायाङ्ग ५१.२८०।

२. सीलंकापरियमारण पुण एयं अट्ठमं विमुक्खज्झयणं सत्तयं उवहाणसुयं नवमं ति। विधिमार्गप्रपा, पृ० ५१।

३. आचाराङ्ग निर्युक्ति गाथा २९०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जहां तक आचाराङ्ग की विषयवस्तु के निरूपण का प्रश्न है, मेरी दृष्टि में श्वे० परम्परा के आचार्यों के सामने उपलब्ध आचाराङ्ग ही रहा है किन्तु दिगम्बर आचार्यों ने मूलाचार को ही आचाराङ्ग का रूप मानकर उसकी विषयवस्तु का निरूपण किया है क्योंकि वहाँ जो गाथा उद्धृत है वह मूलाचार में उसी रूप में मिलती है। श्वे० आगम साहित्य में यह गाथा दशवैकालिक में मिलती है, आचाराङ्ग में नहीं। दशवैकालिक ग्रन्थ भी मुनि के आचार का ही प्रतिपादक ग्रन्थ है।

२–सूत्रकृतांग

(क) श्वेताम्बर ग्रन्थों में—

१. समवायाङ्ग[1] में—सूत्रकृताङ्ग में स्वसमय, परसमय, स्वसमय-परसमय, जीव, अजीव, जीवाजीव, लोक, अलोक और लोकालोक सूचित किए जाते हैं। जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष तक के सभी पदार्थ सूचित किए गए हैं। जो श्रमण अल्पकाल से ही प्रव्रजित हुए हैं और जिनकी बुद्धि खोटे समयों (परसिद्धान्तों) को सुनने से मोहित तथा मलिन है उनको पापकारी मलिनबुद्धि के दुर्गुणों के शोधन के लिए क्रियावादियों के १८०, अक्रियावादियों के ८४, अज्ञानवादियों के ६७ और वैनयिकों के ३२; इन सब ३६३ अन्यदृष्टि-समयों का व्यूहन करके स्वसमय की स्थापना की गई है। नाना दृष्टान्तयुक्त युक्ति-युक्त वचनों द्वारा परमतों की निस्सारता को बतलाया गया है। अनेक अनुयोगों द्वारा विविध प्रकार से विस्तारकर, परसद्भावगुणविशिष्ट, मोक्षपथ के अवतारक, उदार, अज्ञानान्धकाररूपी दुर्गों के लिए दीपकरूप, सिद्धि और सुगति के लिए सोपानरूप, विक्षोभ और निष्प्रकम्प सूत्रार्थ हैं।

अङ्गों के क्रम में यह दूसरा अङ्ग है। इसमें २ श्रुतस्कन्ध, २३ अध्ययन, ३३ उद्देशनकाल, ३३ समुद्देशनकाल और ३६ हजार पद हैं।

वाचनादि का विवेचन आचाराङ्गवत् है। समवायाङ्ग में सूत्रकृताङ्ग के २३ अध्ययन भी गिनाये गये हैं[2]—१–समय, २–वैतालिक, ३–उपसर्गपरिज्ञा, ४–स्त्रीपरिज्ञा, ५–नरकविभक्ति, ६–महावीरस्तुति, ७–कुशीलपरिभाषित, ८–वीर्य, ९–धर्म, १०–समाधि, ११–मार्ग, १२–समवसरण, १३–आख्यातहित (याथातथ्य), १४–ग्रन्थ, १५–यमतीत, १६–गाथा, १७–पुण्डरीक, १८–क्रियास्थान, १९–आहारपरिज्ञा, २०–अप्रत्याख्यान क्रिया, २१–अनगारश्रुत, २२–आर्द्रीय और २३–नालन्दीय।

२. **नन्दीसूत्र में**[3]—सूत्रकृताङ्ग में लोक, अलोक, लोकालोक, जीव, अजीव, जीवाजीव, स्वसमय, परसमय और स्वसमय-परसमय की सूचना की जाती है। इसमें १८० क्रियावादियों, ८४ अक्रियावादियों, ६७ अज्ञानवादियों और ३२ वैनयिकों के, कुल ३६३ परमतों का व्यूहन करके स्वसमय की स्थापना की गई है।

यह दूसरा अङ्ग है। इसमें २ श्रुतस्कन्ध, २३ अध्ययन, ३३ उद्देशनकाल, ३३ समुद्देशनकाल और ३६ हजार पद हैं। शेष वाचनादि का कथन आचाराङ्गवत् है।

१. समवायाङ्गसूत्र ५१५-५१८।
२. वही, २३.१५५; ५७.३००।
३. नन्दीसूत्र ४७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. विधिमार्गप्रपा में[1]—इसमें स्पष्टरूप से प्रथम श्रुतस्कन्ध के १६ और द्वितीय श्रुतस्कन्ध के ७ अध्ययन गिनाये गए हैं। द्वितीय श्रुतस्कन्ध के अध्ययनों को महाध्ययन कहा है। समवायाङ्ग में कथित सूत्रकृताङ्ग के २३ अध्ययन ही यहाँ गिनाये हैं परन्तु कहीं-कहीं किंचित् नामभेद है। यथा ५वां वीरस्तुति, १३वां अहतहं, १४ वाँ गन्ध (संभवतः यह लिपिप्रमाद है), २०वां प्रत्याख्यानक्रिया और २१वां अनगार।

(ख) दिगम्बर ग्रन्थों में[2]—

१. तत्त्वार्थवार्तिक में[3]—सूत्रकृताङ्ग में ज्ञानविनय, प्रज्ञापना, कल्प्याकल्प्य, छेदोपस्थापना और व्यवहारधर्मक्रिया का प्ररूपण है।

२. धवला में[4]—सूत्रकृताङ्ग में ३६ हजार पद हैं। यह ज्ञानविनय, प्रज्ञापना, कल्प्याकल्प्य, छेदोपस्थापना और व्यवहारधर्मक्रिया का निरूपण करता है। स्वसमय और परसमय का भी निरूपण करता है।

३. जयधवला में[5]—सूत्रकृताङ्ग में स्वसमय और परसमय का वर्णन है। इसके साथ ही इसमें स्त्रीसम्बन्धी-परिणाम, क्लीवता, अस्फुटत्व (मन की बातों को स्पष्ट न कहना), कामावेश, विलास, आस्फालनसुख, पुरुष को इच्छा करना आदि स्त्री के लक्षणों का प्ररूपण है।

४. अङ्गप्रज्ञप्ति में[6]—सूत्रकृताङ्ग में ३६ हजार पद हैं। यहां सूत्रार्थ तथा उसके करण को संक्षेप से सूचित किया गया है। ज्ञान-विनय आदि, निर्विघ्न अध्ययन आदि, सर्व सत्क्रिया, प्रज्ञापना, सुकथा, कल्प्य, व्यवहारषृषक्रिया, छेदोपस्थापना, यतिसमय, परसमय और क्रियाभेदों का अनेकशः कथन है।

५. प्रतिक्रमणग्रन्थत्रयी टीका (प्रभाचन्द्रकृत) में[7]—सूत्रकृताङ्ग के २३ अध्ययनों के नाम तथा उनमें प्रतिपादित विषयों का कथन है। समवायाङ्गोक्त अध्ययननामों से इसके नामों में कुछ भिन्नता है।[8]

---

१. विधिमार्गप्रपा पृ० ५१-५२।
२. तत्त्वार्थ० १.२०, पृ० ७३।
३. धवला १.१.२, पृ० ७३।
४. जयधवला गाथा १, पृ० ११२।
५. अंगप्रज्ञप्ति गाथा २०-२२, पृ० २६१।
६. प्रतिक्रमणग्रन्थत्रयी टीका, पृ० ५६-५८।
७. तेवीसाए सुद्दयडज्झयणेसु—
समए वेदालिझे एत्तो उवसग्ग इत्थिपरिणामे।
णिरयंतरवीरथुदी कुसीलपरिभासिए विरिए ॥ १ ॥
धम्मो य अग्गमग्गे समोवसरणं तिकालगंथहिदे।
आदा तदित्थगाथा पुंडरिको किरियठाणेय ॥ २ ॥
आहारयपरिणामे पच्चक्खाणाणगारगुणकित्ति।
सुद्द अत्था णालंदे सुद्दयडज्झाणाणि तेवीसं ॥ ३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(ग) वर्तमान रूप—

इसमें धार्मिक उपदेशों के साथ मुख्यतः अन्य मतावलम्बियों का खण्डन है। इसके दो श्रुतस्कन्ध हैं। प्रथम श्रुतस्कन्ध प्राचीन है और दूसरा प्रथम श्रुतस्कन्ध के परिशिष्ट के समान है। भारत के धार्मिक सम्प्रदायों का ज्ञान कराने की दृष्टि से दोनों श्रुतस्कन्ध महत्त्वपूर्ण हैं।

प्रथम श्रुतस्कन्ध में १६ अध्ययन हैं—१. समय, २. वेयालिय, ३. उपसर्गपरिज्ञा, ४. स्त्रीपरिज्ञा, ५. नरकविभक्ति, ६. वीरस्तव, ७. कुशील, ८. वीर्य, ९. धर्म, १०, समाधि, ११. मार्ग, १२. समवसरण, १३. याथातथ्य (आहत्तहिय), १४ ग्रन्थ (परिग्रह), १५. आदान या आदानीय (संकलिका = शृंखला; जमतीत या यमकीय ये सभी नाम सार्थक हैं) और १६. गाथा।

द्वितीय श्रुतस्कन्ध के ७ महाध्ययन हैं—१ पुण्डरीक, २. क्रियास्थान, ३. आहारपरिज्ञा, ४. प्रत्याख्यान क्रिया ५. आचारश्रुत व अनगारश्रुत, ६. आर्द्रकीय और ७. नालंदीय या नालंदा।

(घ) तुलनात्मक विवरण—

इस आगम के पदों की संख्या में उभय परम्परा में कोई मतभेद नहीं है। पं० कैलाशचन्द शास्त्री ने इसके निकास की संभावना दृष्टिवाद के सूत्र नामक भेद से की है क्योंकि इसका नाम सूत्रकृताङ्ग है[1] जो चिन्त्य है। तत्त्वार्थवार्तिक में परसमय के कथन का कोई उल्लेख नहीं है जबकि समवायाङ्ग, नन्दी, धवला, जयधवला और अङ्गप्रज्ञप्ति में परसमय-कथन का भी उल्लेख है। समवायाङ्ग और नन्दी में तो स्थानाङ्ग आदि में भी परसमय-कथन का उल्लेख है जो एक प्रकार से गौतार्थ (अलङ्कारिक-कथन) मात्र है। जयधवला में स्पष्टरूप से ग्यारह अङ्गों का विषय स्वसमय ही बतलाया है।[2] फिर भी जयधवला में जो सूत्रकृताङ्ग का विषय परसमय बतलाया गया है वह उपलब्ध सूत्रकृताङ्ग का द्योतक है। जयधवला में स्त्री-सम्बन्धी विशेष वक्तव्यों का कथन भी बतलाया है जो उपलब्ध आगम में है। समवायाङ्ग, विधिमार्गप्रपा और प्रतिक्रमणग्रन्थत्रयी में जिन २३ अध्ययनों के नाम बतलाए हैं वे प्रायः परस्पर समान और वर्तमान रूप से मिलते हैं।

अर्थ— १. समय (त्रिकाल स्वरूप), २. **वेदालिग**—(त्रिवेदों का स्वरूप), ३. उपसर्ग (४ प्रकार के उपसर्ग), ४. स्त्रीपरिणाम (स्त्रियों का स्वभाव), ५. नरकान्तर (नरकादि चतुर्गति), ६. वीरस्तुति (२४ तीर्थङ्करों का गुण-कीर्तन), ७. कुशीलपरिभाषा (कुशीलादि ५ पार्श्वस्थों का स्वरूप वर्णन), ८. वीर्य—(जीवों के वीर्य के तारतम्य का वर्णन), ९. धर्म (धर्माधर्म का स्वरूप), १०. अग्र (श्रुताग्रपद वर्णन), ११. मार्ग (मोक्ष तथा स्वर्ग का स्वरूप एवं कारण), १२. समवसरण (२४ तीर्थङ्करों के समवसरण), १३. त्रिकालग्रन्थ (त्रिकालगोचर अशेषपरिग्रह का अशुभत्व), १४. आत्मा—(जीवस्वरूप), १५. तदित्थगाथा (वादमार्ग प्ररूपण), १६. पुंडरीक—(स्त्रियों के स्वर्गादि स्थानों के स्वरूप का वर्णन), १७. क्रियास्थान—(१३ क्रियास्थानों का वर्णन), १८. आहारकपरिणाम—(सभी धान्यों के रस, वीर्य विपाक तथा शरीरगत सप्तधातुस्वरूप वर्णन), १९. प्रत्याख्यान—(सर्वद्रव्य विषयों से निवृत्ति), २०. अनगारगुणकीर्तन—(मुनियों के गुण वर्णन), २१. श्रुत—(श्रुतमाहात्म्य), २२. अर्थ—(श्रुतफल वर्णन) और २३. नालंदा—(ज्योतिष्कदेवों के पटलों का वर्णन)।

—प्रतिक्रमणग्रन्थत्रयी टीका, पृ० ५६-५८।

१. जैनसाहित्य का इतिहास, पूर्वपीठिका, पृ० ६४४।

२. जयधवला पृ० १२०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नन्दी में केवल २३ अध्ययन-संख्या का उल्लेख है, स्पष्ट नाम नहीं हैं। प्रतिक्रमणग्रन्थत्रयी को छोड़कर दिगम्बर ग्रन्थों में इसका इतना स्पष्ट वर्णन अन्यत्र कहीं नहीं मिलता है। आचार्य भद्रबाहुकृत सूत्रकृताङ्ग निर्युक्ति में सूत्रकृताङ्ग के तीन नामों का उल्लेख है—सूतगडं (सूतकृत), सुत्तकडं (सूत्रकृत) और सुयगडं (सूचाकृत)।

३—स्थानाङ्ग

(क) श्वेताम्बर ग्रन्थों में—

१. **समवायाङ्ग में**[1]—स्थानाङ्ग में स्वसमय, परसमय, स्वसमय-परसमय, जीव, अजीव, जीवाजीव, लोक, अलोक और लोकालोक की स्थापना की गई है। द्रव्य, गुण, क्षेत्र, काल और पर्यायों की प्ररूपणा है। शैल (पर्वत), नदी (गङ्गादि), समुद्र, सूर्य, भवन, विमान, आकर (स्वर्णादि की खान), नदी (सामान्य नदी), निधि, पुरुषजाति, स्वर, गोत्र तथा ज्योतिष्क देवों के संचार का वर्णन है। एकविध, द्विविध से लेकर दसविध तक जीव, पुद्गल तथा लोकस्थानों का वर्णन है।

अङ्गों के क्रम में यह तीसरा अङ्ग है। इसमें १ श्रुतस्कन्ध, १० अध्ययन, २१ उद्देशनकाल, २१ समुद्देशनकाल और ७२ हजार पद हैं। वाचनादि का कथन आचाराङ्गवत् है।

२. **नन्दीसूत्र में**[2]—स्थानाङ्ग में जीव, अजीव, जीवाजीव, स्वसमय, परसमय, स्वसमय-परसमय, लोक, अलोक और लोकालोक की स्थापना की गई है। इसमें टङ्क (छिन्न तट), कूट (पर्वतकूट), शैल, शिखरि, प्राग्भार, कुण्ड, गुहा, आकर, तालाब और नदियों का कथन है।

शेष कथन समवायाङ्ग की तरह है—परन्तु यहाँ एकादि क्रम से वृद्धि करते हुए १० प्रकार के पदार्थों के कथन का उल्लेख नहीं है। इसमें संख्यात संग्रहणियों का अतिरिक्त कथन है।

३. **विधिमार्गप्रपा में**[3]—स्थानाङ्ग में एक श्रुतस्कन्ध है। एक स्थान, द्विस्थान आदि के क्रम से दसस्थान नाम वाले १० अध्ययन हैं।

(ख) दिगम्बर ग्रन्थों में—

१. **तत्त्वार्थवार्तिक में**[4]—स्थानाङ्ग में अनेक आश्रयवाले अर्थों का निर्णय है।

२. **धवला में**[5]—स्थानाङ्ग में ४२ हजार पद हैं। एक से लेकर उत्तरोत्तर एक-एक अधिक स्थानों का वर्णन है। जैसे—जीव का १ से १० संख्या तक का कथन—

एक्को चेव महप्पा सो दुवियप्पो तिलक्खणो भणिदो।
चदुसंकमणाजुत्तो पंचग्गगुणप्पहाणो य ॥

---

१. समवायाङ्गसूत्र ५१९-५२१।
२. नन्दीसूत्र ४८।
३. विधिमार्गप्रपा, पृ० ५२।
४. तत्त्वार्थ० १.२०, पृ० ७३।
५. धवला १.१.२, पृ० १०१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छक्कापक्कमजुत्तो उवगुत्तो सत्तभंगिसब्भावो।
अट्ठासवो णवट्ठो जीवो दसट्ठाणिओ भणिओ॥

३. जयधवला में[1]—स्थानाङ्ग में जीव और पुद्गलादिक के एक से लेकर एकोत्तर क्रम (२,३,४ आदि) से स्थानों का वर्णन है। धवला में कथित "एक्को चेव महप्पा" गाथा भी उद्धृत है।

४. अंगप्रज्ञप्ति में[2]—स्थानाङ्ग में ४२ हजार पद हैं। एकादि क्रम से स्थान भेद हैं, जैसे—संग्रह नय से जीव एक है। संसारी और मुक्त के भेद से (व्यवहार नय से) जीव दो हैं। उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य के भेद से जीव तीन प्रकार का है। चार गतियों में संक्रमण करने से जीव चार प्रकार का है। पाँच भावों के भेद से जीव पाँच प्रकार का है। पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर, ऊर्ध्व और अधःगमन करने के कारण छः प्रकार का जीव है। स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, स्यादुभय, स्यादवक्तव्य स्याद् अस्त्यवक्तव्य, स्यान्नास्ति अवक्तव्य और स्यादुभय-अवक्तव्य के भेद से जीव सात प्रकार का है। आठ प्रकार के कर्मों से युक्त होने से जीव आठ प्रकार का है। नवर्थक होने से जीव नौ प्रकार का है। पृथिवी, जल, तेज, वायु, प्रत्येक, निगोद, द्वि, त्रि, चतुः तथा पांच इन्द्रियों के भेद से १० प्रकार का जीव है। इसी प्रकार पुद्गल नाम से अजीव एक है। अणु और स्कन्ध के भेद से अजीव पुद्गल दो प्रकार का है। इसी प्रकार अन्यत्र भी जानना चाहिए।

(ग) वर्तमान रूप—

इसमें एक स्थानिक, द्विस्थानिक आदि १० स्थान या अध्ययन हैं जिनमें एक से लेकर दस तक की संख्या के अर्थों का कथन है। इसमें लोकसम्मत गर्भधारण आदि विषयों का भी कथन है। इसमें आठ निह्नवों में से "बोटिक" को छोड़कर केवल सात निह्नवों का कथन है। इससे ज्ञात होता है कि इसके रचनाकाल तक जैनों में सम्प्रदायभेद नहीं हुआ था। इस तरह इसमें वस्तु का निरूपण संख्या की दृष्टि से किया गया है, जिससे यह संग्रह प्रधान कोश-शैली का ग्रन्थ हो गया है।

(घ) तुलनात्मक विवरण—

दिगम्बर और श्वेताम्बर ग्रन्थोक्त पद संख्या में अन्तर है। "इसके १० अध्ययन हैं" ऐसा स्पष्ट कथन समवायाङ्ग आदि श्वेताम्बर ग्रन्थों में तो है, परन्तु दिगम्बर ग्रन्थों में नहीं है। धवला में जीवादि के १ से १० संख्या तक के कथन का स्पष्ट उल्लेख होने से तथा जयधवला और अङ्ग-प्रज्ञप्ति में तदनुरूप ही उदाहरण मिलने से यह संभावना की जा सकती है कि इसमें १० अध्ययन रहे होंगे, परन्तु उनका विभाजन संख्या के आधार पर रहा होगा या विषय के आधार पर यह स्पष्ट रूप से नहीं कहा जा सकता है। दिगम्बर-ग्रन्थोक्त शैली और उपलब्ध आगम की शैली में स्पष्ट अन्तर है। समवायाङ्ग के इस कथन से कि "इसमें एकविध, द्विविध से लेकर दसविध तक जीव, पुद्गल तथा लोकस्थानों का वर्णन है" स्पष्ट हो दिगम्बर शैली का संकेत है। तत्त्वार्थवार्तिककार का यह कथन कि "इसमें अनेक आश्रयवाले अर्थों का निर्णय है" पूर्ण स्पष्ट नहीं है।

---

१. जयधवला गाथा १, पृ० ११३.
२. अङ्गप्रज्ञप्ति गाथा २३-२८, पृ० २६१-२६२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह एक प्रकार का कोश ग्रन्थ है जिसकी शैली समवायाङ्ग से निश्चित ही भिन्न रही है। वर्तमान स्थानाङ्ग दिगम्बरोक्त स्थानाङ्ग-शैली से सर्वथा भिन्न है। आश्चर्य है कि स्थानाङ्ग में १० संख्या के वर्णन प्रसङ्ग में स्थानाङ्ग के १० अध्ययनों का उल्लेख नहीं है, जो होना चाहिए था। वर्तमान आगम में गर्भधारण आदि अनेक लौकिक बातों का समावेश कालान्तर में किया गया लगता है।

४—समवायाङ्ग

(क) श्वेताम्बर ग्रन्थों में—

१. समवायाङ्ग में[1]—स्वसमयादि सूत्रकृताङ्गवत् सूचित किए जाते हैं। इसमें एक-एक वृद्धि करते हुए १०० तक के स्थानों का कथन है तथा जगत् के जीवों के हितकारक बारह प्रकार के श्रुत-ज्ञान का संक्षेप से समवतार है। नाना प्रकार के जीवाजीवों का विस्तार से कथन है। अन्य भी बहुत प्रकार के विशेष तत्त्वों का कथन है। नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और सुरगणों के आहार, उच्छ्वास, लेश्या, आवास-संख्या, आयाम-प्रमाण, उपपात-च्यवन, अवगाहना, उपधि, वेदना, विधान (भेद), उपयोग, योग, इन्द्रिय, कषाय, नाना प्रकार की जीव-योनियाँ, पर्वत आदि के विष्कम्भ (चौड़ाई), उत्सेध (ऊँचाई), परिरय (परिधि) के प्रमाण, मन्दर आदि महीधरों के भेद, कुलकर, तीर्थङ्कर, गणधर, समस्त भरतक्षेत्र के स्वामी, चक्रवर्ती, चक्रधर (वासुदेव), हलधर (बलदेव) आदि का निर्वचन है।

अङ्गों के क्रम में यह चौथा अङ्ग है। इसमें १ श्रुतस्कन्ध, १ अध्ययन, १ उद्देशन, १ समुद्देशन और १ लाख ४४ हजार पद हैं। वाचनादि का विवेचन आचाराङ्गवत् है।

२. नन्दीसूत्र में[2]—समवायाङ्ग में जीवादि का (समवायाङ्गवत्) समाश्रय किया गया है। एकादि से वृद्धि करते हुए १०० स्थानों तक के भावों की प्ररूपणा है। द्वादश गणिपिटक का संक्षेप से परिचय है।

शेष श्रुतस्कन्धादि तथा वाचनादि का कथन समवायाङ्गवत् है।

३. विधिमार्गप्रपा में[3]—इसमें श्रुतस्कन्ध, अध्ययन और उद्देशक का उल्लेख नहीं है।

(ख) दिगम्बर ग्रन्थों में—

१. तत्त्वार्थवार्तिक में[4]—समवायाङ्ग में सभी पदार्थों का समवाय (समानता से कथन) है। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के भेद से वह समवाय ४ प्रकार का है, जैसे—**(क) द्रव्य समवाय**—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, लोकाकाश तथा एक जीव के एक समान असंख्यात प्रदेश होने से इनका द्रव्यरूप से समवाय है (पर्यायार्थिक नय से प्रदेशों के द्रव्यत्व की भी सिद्धि होती है)। **(ख) क्षेत्र समवाय**—जम्बूद्वीप, सर्वार्थसिद्धि, अप्रतिष्ठान नरक तथा नन्दीश्वरद्वीप की एक बावड़ी ये सब १ लाख योजन विस्तारवाले होने से इनका क्षेत्र की दृष्टि से समवाय है। **(ग) काल समवाय**—

---

१. समवायाङ्गसूत्र ५२२-५२५.
२. नन्दीसूत्र ४९.
३. विधिमार्गप्रपा, पृ० ५२.
४. तत्त्वार्थ १.२०, पृ० ७३.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी ये दोनों १० कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण होने से इनमें काल समवाय है। **(घ) भाव समवाय**—क्षायिक सम्यक्त्व, केवलज्ञान, केवलदर्शन, यथाख्यात चारित्र ये सब अनन्त विशुद्धिरूप होने से भाव समवाय वाले हैं।

२. धवला में[1]—समवायाङ्ग में १ लाख ६४ हजार पदों के द्वारा सभी पदार्थों के समवाय का कथन है। समवाय ४ प्रकार का है—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव। जैसे—(क) **द्रव्य समवाय**—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, लोकाकाश और एक जीव के प्रदेश परस्पर समान हैं। (ख) **क्षेत्र समवाय**—सीमन्तक नरक (प्रथम इन्द्रक बिल), मानुष क्षेत्र, ऋजु विमान (सौधर्म इन्द्र का पहला इन्द्रक) और सिद्धलोक ये चारों क्षेत्र की अपेक्षा समान हैं। (ग) **काल समवाय**—एक समय दूसरे समय के समान है और एक मुहूर्त दूसरे मुहूर्त के समान है। (घ) **भाव समवाय**—केवलज्ञान और केवलदर्शन समान हैं क्योंकि ज्ञेयप्रमाण ज्ञान-मात्र में चेतना शक्ति की उपलब्धि होती है।

३. जयधवला में[2]—समवायाङ्ग में द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावों के समवाय का वर्णन है। शेष कथन प्रायः धवला के समान है।

४. अङ्गप्रज्ञप्ति में[3]—समवायाङ्ग में १ लाख ६४ हजार पद हैं। संग्रहनय से द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावों की अपेक्षा पदार्थों के सादृश्य का कथन है। शेष कथन प्रायः धवला के समान है।

(ग) वर्तमान रूप—

यह अङ्गग्रन्थ भी स्थानाङ्ग की शैली में लिखा गया कोश ग्रन्थ है। इसमें १ से वृद्धि करते हुए १०० समवायों का वर्णन है। एक प्रकीर्ण समवाय है जिसमें १०० से आगे की संख्याओं का समवाय बतलाया गया है। इसके अन्त में १२ अङ्ग ग्रन्थों का परिचय दिया गया है जो नन्दीसूत्रोक्त श्रुतपरिचय से साम्य रखता है। जिससे इसके कुछ अंशों की परवर्तिता सिद्ध होती है।

(घ) तुलनात्मक समीक्षा—

दिगम्बर और श्वेताम्बर ग्रन्थों में बतलाई गई इसकी पदसंख्या में कुछ अन्तर है। दिगम्बरों के सभी ग्रन्थों में इस ग्रन्थ का विषय एक जैसा बतलाया है। उदाहरण में यत्किञ्चित् अन्तर है। समवायाङ्ग और नन्दी में १०० समवायों तथा श्रुतावतार का उल्लेख है जो वर्तमान आगम में देखा जाता है। वर्तमान आगम में एक प्रकीर्ण समवाय भी है जिसमें १०० से अधिक के समवायों का कथन है। विधिमार्गप्रपा में अध्ययनादि के विभाजन का निषेध है। उसमें १०० समवाय और श्रुतावतार का भी उल्लेख नहीं है जो चिन्त्य है। दिगम्बर ग्रन्थों में भी १०० समवाय तथा श्रुतावतार का उल्लेख नहीं है। वहाँ द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के भेद से ४ प्रकार के समवाय द्वारा सभी पदार्थों के विवेचन का निर्देश है। इस तरह उपलब्ध आगम की शैली दिगम्बर-ग्रन्थोक्त शैली से भिन्न है। उपलब्ध आगम की शैली उपलब्ध स्थानाङ्ग जैसी (संग्रह-प्रधान) ही है। वस्तुतः स्थानाङ्ग और समवायाङ्ग की शैली में अन्तर होना चाहिए था। दिगम्बर ग्रन्थोक्त स्थानाङ्ग और समवायाङ्ग की शैली में अन्तर है। दिगम्बर ग्रन्थोक्त स्थानाङ्ग और समवायाङ्ग की दो शैलियों से उपलब्ध स्थानाङ्ग और समवायाङ्ग की शैली भिन्न प्रकार की है।

---

१. धवला० १.१.२, पृ० १०२.

२. जयधवला गाथा १, पृ० ११३.

३. अङ्गप्रज्ञप्ति गाथा २९-३५, पृ० २६३-२६४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५—व्याख्याप्रज्ञप्ति (भगवती)

(क) श्वेताम्बर ग्रन्थों में—

१. समवायाङ्ग में[1]—व्याख्याप्रज्ञप्ति में नानाविध देव, नरेन्द्र, राजर्षि तथा अनेक संशय-ग्रस्तों के प्रश्नों के भगवान् जिनेन्द्र ने विस्तार से उत्तर दिये हैं। द्रव्य, गुण, पर्याय, क्षेत्र, काल, प्रदेश, परिणाम, यथास्थितिभाव, अनुगम, निक्षेप, नय, प्रमाण और सुनिपुण उपक्रमों के विविध प्रकारों के द्वारा प्रकट रूप से प्रकाशक, लोकालोक का प्रकाशक, संसार-समुद्र से पार उतारने में समर्थ, सुरपति से पूजित, भव्य जनों के हृदय को आनन्दित करने वाले, तमःरज-विध्वंशक, सुदृष्ट-दीपकरूप, ईहामति-बुद्धिवर्द्धक, पूरे (अन्यून) ३६ हजार व्याकरणों (प्रश्नों के उत्तर) को दिखाने से व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्रार्थ के अनेक प्रकारों का प्रकाशक, शिष्यों का हितकारक और गुणों से महान् अर्थ वाला है।

स्वसमयादि का कथन पूर्ववत् है।

अंगों के क्रम में यह ५वां अंगग्रन्थ है। इसमें १ श्रुतस्कन्ध, १०० से कुछ अधिक अध्ययन, १० हजार उद्देशक, १० हजार समुद्देशक, ३६ हजार प्रश्नों के उत्तर तथा ८४ हजार पद हैं।

वाचनादि का कथन आचाराङ्गवत् है।

यहाँ व्याख्याप्रज्ञप्ति के लिए "विवाहपन्नत्ती" और "वियाहपन्नत्ती" दोनों पदों का प्रयोग हुआ है। इसके लिए "भगवती" पद का भी प्रयोग किया गया है तथा यहाँ भी इसके ८४ हजार पद बतलाये गये हैं।[2]

२. नन्दीसूत्र में[3]—व्याख्याप्रज्ञप्ति में जीवादि का कथन है (पूर्ववत्)। समवायांगोक्त "नाना-विध देवादि०" यह अंश यहाँ नहीं है। यहाँ केवल "विवाहपन्नत्ती" शब्द का प्रयोग हुआ है। पद परिमाण दो लाख ८८ हजार बतलाया है। शेष कथन समवायाङ्गवत् है।

३. विधिमार्गप्रपा में[4]—व्याख्याप्रज्ञप्ति के लिए 'भगवती" और विवाहपन्नती" दोनों शब्दों का प्रयोग एक साथ किया गया है। इसमें श्रुतस्कन्ध नहीं हैं। 'शतक' नामवाले ४१ अध्ययन हैं जो अवान्तर शतकों के साथ कुल १३८ शतक हैं।[5] इसके १९२३।१९३२ उद्देशक बतलाये हैं।

(ख) दिगम्बर ग्रन्थों में –

१. तत्त्वार्थवार्तिक में[6]—"जीव है या नहीं है" इत्यादि रूप से ६० हजार प्रश्नों के उत्तर व्याख्याप्रज्ञप्ति में हैं।

---

१. समवा० सूत्र ५२६-५२९; ८४-३९५।

२. समवा० सूत्र ८४-३९५।

३. नन्दीसूत्र ५०।

४. विधिमार्गप्रपा, पृ० ५३-५४।

५. एकतालीस शतकों का १३८ शतकों में विभाजन—३३ से ३९ तक के शतक १२-१२ शतकों के समवाय होने से (७ × १२ =)८४ शतक, ४०वाँ शतक २१ शतकों का समवाय है, शेष १ से ३२ तक तथा ४१वाँ प्रत्येक १–१ शतक होने से ३३ शतक हैं। (कुल ८४ + २१ + ३३ = १३८)

६. तत्त्वार्थ० १.२०, पृ० ७३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. धवला में[1]—इसमें २ लाख २८ हजार पदों के द्वारा क्या जीव है ? क्या जीव नहीं है ? इत्यादि रूप से ६० हजार प्रश्नों के व्याख्यान हैं।

३. जयधवला में[2]—इसमें ६० हजार प्रश्नों तथा ९६ हजार छिन्नच्छेदों से जनित शुभाशुभों का वर्णन है।

४. अङ्गप्रज्ञप्ति में[3]—इसे मूल गाथा में "विवायपण्णत्ति" कहा है तथा इसकी संस्कृत छाया में "विपाकप्रज्ञप्ति" कहा है। इसमें जीव हैं, नहीं है, नित्य है, अनित्य है आदि ६० हजार गणि प्रश्न हैं। पदसंख्या २२८००० है।

(ग) वर्तमान रूप—

इसमें गौतम गणधर प्रश्नकर्त्ता हैं तथा भगवान् महावीर उत्तर प्रदाता हैं। इस शैली का स्पष्ट उल्लेख तत्त्वार्थवार्तिक में मिलता है—"एवं हि व्याख्याप्रज्ञप्तिदण्डकेषु उक्तम्....इति गौतम-प्रश्ने भगवता उक्तम्"।[4]

इस ग्रन्थ का प्रारम्भ मंगलाचरण पूर्वक होता है। ऐसा किसी अन्य अङ्ग ग्रन्थ में नहीं है। प्रारम्भ के २० शतक प्राचीन हैं। वेबर के अनुसार बाद के २१ शतक पीछे से जोड़े गए हैं।[5] रायपसेणीय, पन्नवणा आदि अङ्ग बाह्य ग्रन्थों के भी उल्लेख इसमें मिलते हैं। भगवान् पार्श्वनाथ के शिष्यों की भी चर्चा है। जयन्ति श्राविका का भी कथन है। इन्द्रभूति, अग्निभूति और वायुभूति गणधरों के तो नाम हैं परन्तु सुधर्मा गणधर का नाम नहीं है। पौधे, लेश्या, कर्मबन्ध, समवसरण, त्रेता, द्वापर, कलियुग, ब्राह्मी-लिपि आदि का वर्णन है।

व्याख्यात्मक कथन होने से इसे व्याख्याप्रज्ञप्ति कहते हैं तथा पूज्य और विशाल होने से इसे "भगवती" भी कहते हैं।

(घ) तुलनात्मक विवरण—

इसके पद-प्रमाण के सम्बन्ध में दिगम्बर ग्रन्थों में तो एकरूपता है, परन्तु श्वेताम्बरों के समवायाङ्ग और नन्दीसूत्र में एकरूपता नहीं है। इस तरह पदप्रमाण के सम्बन्ध में ३ मत हैं—(१) दिगम्बर ग्रन्थों का, (२) समवायाङ्ग का और (३) नन्दीसूत्र का। नन्दी में आचाराङ्ग से व्याख्याप्रज्ञप्ति तक स्पष्ट रूप से क्रमशः दुगुना-दुगुना पद-प्रमाण बतलाया गया है; परन्तु समवायाङ्ग में यहाँ ऐसा नहीं किया गया है। समवायाङ्ग में दो स्थानों पर पदसंख्या उल्लिखित हुई है और दोनों स्थानों पर ८४ हजार पद बतलाए हैं। प्रश्नों के उत्तरों की संख्या के सन्दर्भ में भी ३ मत मिलते हैं—(१) श्वेताम्बर ग्रन्थों में ३६ हजार, (२) तत्त्वार्थवार्तिक, धवला और अङ्गप्रज्ञप्ति में ६० हजार और (३) जयधवला में ६० हजार प्रश्नोत्तरों के साथ ९६ हजार छिन्नच्छेद। वर्तमान

१. धवला १.१.२, पृ० १०२.
२. जयधवला गाथा १, पृ० ११४.
३. अङ्गप्रज्ञप्ति गाथा ३६-३८, पृ० २६४.
४. तत्त्वार्थ० ४.२६.
५. जैन साहित्य इ० पूर्वपीठिका, पृ० ६५७.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्याप्रज्ञप्ति की दिगम्बर उल्लेखों से भिन्नता है। इसमें गौतम का प्रश्नकर्त्ता होना और सुधर्मा का नाम न होना चिन्त्य है। गौतम का प्रश्नकर्त्ता होना दिगम्बरों के अनुकूल है। इस ग्रन्थ का कुछ अंश निश्चय ही प्राचीन दृष्टिगोचर होता है, परन्तु रायपसेणीय आदि अङ्गबाह्य ग्रन्थों के उल्लेखों, समवायाङ्ग आदि में निर्दिष्ट विषयवस्तु से भिन्नता होने, मंगलाचरण होने आदि कारणों से इसके कुछ अंशों को बाद में जोड़ा गया है।

इस ग्रन्थ का भगवती नाम श्वेताम्बरों में प्रसिद्ध है। समवायाङ्ग और विधिमार्गप्रपा में इस नाम का प्रयोग भी मिलता है। इस ग्रन्थ के प्राकृत नाम कई हैं। गोम्मटसार जीवकाण्ड में इसे "विक्खापण्णत्ती" कहा है जो व्याख्याप्रज्ञप्ति के अधिक निकट प्रतीत होता है[1], परन्तु यह नाम धवला आदि में न होने से ज्ञात होता है कि यह नाम बाद में संस्कृत के स्वर-व्यञ्जन-परिवर्तन के आधार पर दिया गया है।

६—ज्ञाताधर्मकथा

(क) श्वेताम्बर ग्रन्थों में—

१. समवायाङ्ग में[2]—ज्ञाताधर्मकथा में ज्ञातों के (१) नगर, (२) उद्यान, (३) चैत्य, (४) वन-खण्ड, (५) राजा, (६) माता-पिता, (७) समवसरण, (८) धर्माचार्य, (९) धर्मकथा, (१०) इहलौकिक-पारलौकिक ऋद्धिविशेष, (११) भोगपरित्याग, (१२) प्रव्रज्या, (१३) श्रुतपरिग्रह, (१४) तपोपधान, (१५) पर्याय (दीक्षा पर्याय), (१६) सल्लेखना, (१७) भक्तप्रत्याख्यान, (१८) पादपोपगमन, (१९) देवलोक गमन, (२०) सुकुलप्रत्यागमन, (२१) पुनः बोधिलाभ (सम्यक्त्वप्राप्ति) और (२२) अन्त-क्रियाओं का वर्णन है।

इसमें (१) श्रेष्ठ जिन-भगवान् के शासन की संयमरूपी प्रव्रजितों की विनयप्रधान प्रतिज्ञा के पालन करने में जो धृति, मति, और व्यवसाय (पुरुषार्थ) से दुर्बल, (२) तप-नियम, तपोपधानरूप युद्ध-दुर्धर भार को वहन करने में असमर्थ होने से पराङ्मुख, (३) घोर परीषहों से पराजित होकर सिद्धालय प्राप्ति के कारणभूत महामूल्य ज्ञानादि से पतित, (४) विषय सुखों की तुच्छ आशा के वशीभूत होकर रागादि दोषों से मूर्च्छित, (५) चारित्र, ज्ञान और दर्शन की विराधना से सर्वथा निःसार और शून्य, (६) संसार के अपार दुःखरूप दुर्गतियों के भवप्रपञ्च में **पतित ऐसे पतित पुरुषों की कथाएँ हैं।**

जो धीर हैं, परीषहों और कषायों को जीतने वाले है, धर्म के धनी हैं, संयम में उत्साहयुक्त हैं, ज्ञान, दर्शन, चारित्र और समाधियोग की आराधना करने वाले हैं, शल्यरहित होकर शुद्ध सिद्धालय के मार्ग की ओर अभिमुख हैं ऐसे **महापुरुषों की कथायें हैं।**

जो देवलोक में उत्पन्न होकर देवों के अनुपम सुखों को भोगकर कालक्रम से वहां से च्युत होकर पुनः मोक्षमार्ग को प्राप्तकर अन्तक्रिया से विचलित (अन्तसमय में विचलित) हो गए हैं उनकी पुनः मोक्षमार्ग-स्थिति की कथायें हैं।

१. गोम्मटसार जीवकाण्ड गाथा ३५६.

२. समवा० सूत्र ५३०-५३४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अङ्गक्रम में यह छठा अङ्ग है। इसमें २ श्रुतस्कन्ध और १९ अध्ययन हैं जो संक्षेप से दो प्रकार के हैं—चरित और कल्पित। २९ उद्देशनकाल, २९ समुद्देशनकाल और संख्यात सहस्र पद हैं।

धर्मकथाओं के १० वर्ग हैं। प्रत्येक वर्ग में ५००-५०० आख्यायिकायें हैं, प्रत्येक आख्यायिका में ५००-५०० उपाख्यायिकायें हैं, प्रत्येक उपाख्यायिका में ५००-५०० आख्यायिका-उपाख्यायिकायें हैं। इस तरह पूर्वापर सब मिलाकर साढ़े तीन करोड़ अपुनरुक्त कथायें हैं।

शेष वाचना आदि का कथन आचाराङ्गवत् है।

२ **नन्दीसूत्र में**[1]—इसमें ज्ञाताधर्मकथा की विषयवस्तु प्रायः समवायाङ्गवत् ही बतलाई है। क्रम में अन्तर है। 'पतित प्रव्रजित पुरुषों की कथायें हैं', यह पैराग्राफ नहीं है। उद्देशन काल १९ और समुद्देशनकाल भी १९ बतलाये हैं।

३. **विधिमार्गप्रपा में**[2]—इसमें दो श्रुतस्कन्ध हैं—ज्ञाता और धर्मकथा। ज्ञाता के १९ अध्ययन हैं—(१) उत्क्षिप्त, (२) संघाट, (३) अंड, (४) कूर्म, (५) शैलक, (६) तुम्बक, (७) रोहिणी, (८) मल्ली, (९) माकन्दी, (१०) चंदिमा, (११) दावद्रव, (१२) उदक, (१३) मंडुक, (१४) तेतली, (१५) नंदिफल, (१६) अवरकंका, (१७) आकीर्ण, (१८) सुंसुमा और (१९) पुंडरीक।

धर्मकथाओं के १० वर्ग हैं—जिनमें क्रमशः १०,१०,४,४,३२,३२,४,४,८,८, अध्ययन हैं।

(ख) दिगम्बर ग्रन्थों में—

१. **तत्त्वार्थवार्त्तिक में**[3]—अनेक आख्यानों और उपाख्यानों का वर्णन है।

२. **धवला में**[4]—नाथधर्मकथा में ५ लाख ५६ हजार पद हैं जिनमें सूत्र-पौरुषी-विधि (सिद्धान्तोक्त-विधि) से तीर्थंकरों की धर्मदेशना का, गणधरों के संदेह निवारण की विधि का तथा बहुत प्रकार की कथा-उपकथाओं का वर्णन है।

३. **जयधवला में**[5]—नाथधर्मकथा में तीर्थंकरों की धर्मकथाओं के स्वरूप का वर्णन है। तीर्थंकर दिव्यध्वनि द्वारा धर्मकथाओं के स्वरूप का कथन करते हैं। इसमें उन्नीस धर्मकथायें हैं।

४. **अङ्गप्रज्ञप्ति में**[6]—इसमें "णाणकहा" तथा "णाहकहा" दोनों शब्दों का प्रयोग है जिनकी संस्कृत-छाया 'ज्ञातृकथा' तथा 'नाथकथा' की है। पुष्पिका में "णादाधम्मकहा" लिखा है इसमें ५५६००० पद हैं। इसे नाथकथा के कथन से संयुक्त कहा है —(नाथ = त्रिलोक स्वामी, धर्मकथा =

---

१. नन्दीसूत्र ५१।
२. विधिमार्गप्रपा पृ० ५५।
३. तत्त्वार्थ० १.२० पृ० ७३।
४. धवला १.१.२ पृ० १०२-१०३।
५. जयधवला गाथा १ पृ० ११४-११५।
६. अङ्गप्रज्ञप्ति गाथा ३९-४४ पृ० २६५-२६६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्त्व-संकथन)। इसमें गणधर, चक्रवर्ती और इन्द्र के द्वारा प्रश्न करने पर दश धर्म का कथन या जीवादि वस्तु का कथन है। अथवा ज्ञातृ, तीर्थंकर, गणि, चक्रि, राजर्षि, इन्द्र आदि की धर्मानुकथादि का कथन है।

(ग) वर्तमान रूप—

छठें से ग्यारहवें तक के कथा-प्रधान अङ्ग-ग्रन्थों में सुधर्मा और जम्बू स्वामी के लिए अनेक विशेषणों का प्रयोग किया गया है। क्रिया पद अन्यपुरुष में है जिससे लगता है कि इनका रचयिता स्वयं सुधर्मा या जम्बू स्वामी नहीं है अपितु उनको प्रमाण मानकर किसी अन्य व्यक्ति ने रचना की है।

इस कथा-ग्रन्थ की मुख्य और अवान्तर कथाओं में आई हुई अनेक घटनाओं से तथा विविध प्रकार के वर्णनों से तत्कालीन इतिहास और संस्कृति की जानकारी प्राप्त होती है। इसके दो श्रुत-स्कन्ध हैं—

प्रथम श्रुतस्कन्ध में १९ अध्ययन हैं—

(१) उत्क्षिप्त (मेघकुमार की कथा), (२) संघाटक (धन्नासेठ), (३) अंडक (चम्पानगरी-वर्णन तथा मयूर-अण्डकथा), (४) कूर्म (वाराणसी नगरी-वर्णन तथा कछुआ की कथा), (५) शैलक (द्वारका-वर्णन तथा शैलक की कथा), (६) तुम्बक (राजगृह का वर्णन), (७) रोहिणीज्ञात (वधू रोहिणी की कथा), (८) मल्ली (१९वें तीर्थंकर की कथा), (९) माकन्दी (वणिक् पुत्र जिनपालित और जिनरक्षित की कथा), (१०) चन्द्र, (११) दावद्रव (दावद्रव समुद्र तट पर स्थित वृक्ष की कथा), (१२) उदकज्ञात (कलुषित जलशोधन), (१३) मंडुक ज्ञात या दर्दुरज्ञात (नन्द के जीव मेढ़क की कथा), (१४) तेतलि-पुत्र, (१५) नन्दीफल, (१६) द्रौपदी, (१७) आकीर्ण (जंगली अश्व), (१८) सुंसुमा (सेठ कन्या) और (१९) पुंडरीक।

इन कथाओं में कथा को अपेक्षा उदाहरण पर विशेष बल दिया गया है।

द्वितीय श्रुतस्कन्ध—विषय और शैली की दृष्टि से यह प्रथम श्रुतस्कन्ध की अपेक्षा भिन्न प्रकार का है। इसमें धर्मकथाओं के १० वर्ग हैं जिनमें चमर, बलि, चन्द्र, सूर्य, शक्रेन्द्र, ईशानेन्द्र, आदि देवों की पटरानियों के पूर्वभव की कथायें हैं। इन पटरानियों के नाम उनके पूर्वभव (मनुष्य भव) की स्त्री-योनि से सम्बन्धित हैं। जैसे काली, रजनी, मेघा आदि।

(घ) तुलनात्मक विवरण—

यद्यपि तत्त्वार्थवार्तिक में अनेक आख्यान-उपाख्यान कहे हैं परन्तु जयधवला में ज्ञाताधर्म की १९ धर्मकथाओं के कथन का उल्लेख मिलता है जो संभवतः १९ अध्ययनों का द्योतक है। इससे तथा श्वे० ग्रन्थों के उल्लेख से एक बात ज्ञात होती है कि मूलतः इसमें १९ अध्ययन रहे होंगे। 'धर्म-कथाओं के १० वर्ग हैं जिनमें ३½ करोड़ कथायें हैं' इत्यादि कथन अतिरंजनापूर्ण है। इन १० धर्म-कथाओं का स्थानाङ्ग में कोई उल्लेख भी नहीं मिलता है। श्वे० ग्रन्थोक्त संख्यात सहस्र पद-संख्या अनिश्चित है जबकि दिग० ग्रन्थों में एक निश्चित पदसंख्या का उल्लेख किया गया है। समवायाङ्गोक्त २९ उद्देशन और २९ समुद्देशन काल में संभवतः १९ अध्ययन और १० धर्मकथाओं के वर्ग को जोड़कर २९ कहा है जबकि नंदी में मात्र १९ उद्देशन और १९ समुद्देशन काल कहे हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"ज्ञाता" शब्द का अर्थ "उदाहरण" ऐसा जो टीकाकार अभयदेव ने लिखा है वह प्राप्त किसी भी उद्धरण से सिद्ध नहीं है। ऐसा उन्होंने संभवतः उपलब्ध आगम के साथ समन्वय करने का प्रयत्न किया है अन्यथा यह ज्ञातवंशी (दिग० नाथवंशी) भगवान् महावीर की धर्मकथाओं से सम्बन्धित रहा है। ऐसा दिग० ग्रन्थों से स्पष्ट है। जब इस अङ्ग ग्रन्थ के नाम के शब्दार्थ पर विचार करते हैं तो देखते हैं कि दिग० इसे नाथधर्मकथा (णाहधम्मकहा) कहते हैं और श्वे० ज्ञातृधर्मकथा (णायाधम्मकहा) 'ज्ञातृ' से श्वेताम्बर-मान्यतानुसार ज्ञातृवंशीय महावीर का तथा 'नाथ' से दिगम्बर-मान्यतानुसार नाथवंशीय महावीर का ही बोध होता है। अतः भगवान् महावीर से सम्बन्धित या उनके द्वारा उपदिष्ट धर्म कथाओं का ही संचयन इसमें होना चाहिए। धर्मच्युतों को पुनः धर्माराधना में संस्थापित करना उन कथाओं का उद्देश्य रहा है ऐसा समवायांग और नन्दी के उल्लेखों से स्पष्ट है। समवायांग से ज्ञात होता है कि इसमें तीन प्रकार की कथायें थीं—(१) पतितों की, (२) दृढ़ धार्मिकों की और (३) धर्ममार्ग से विचलित होकर पुनः धर्ममार्ग का आश्रय लेने वालों की।

७—उपासकदशा

(क) श्वेताम्बर ग्रन्थों में—

१. **स्थानाङ्ग में**[1]—इसके १० अध्ययन हैं—आनन्द, कामदेव, चूलनीपिता, सुरादेव, चुल्लशतक, कुण्डकोलिक, सद्दालपुत्र, महाशतक, नन्दिनीपिता और लेयिकापिता।

२. **समवायाङ्ग में**[2]—इसमें उपासकों के नगर, उद्यान, चैत्य, वनखण्ड, राजा, माता-पिता, समवसरण, धर्माचार्य, धर्मकथायें, इहलौकिक-पारलौकिक ऋद्धिविशेष, शीलव्रत-विरमण-गुण-प्रत्याख्यान-प्रोषधोपवास प्रतिपत्ति, सुपरिग्रह (श्रुतपरिग्रह), तपोपधान, प्रतिमा, उपसर्ग, सल्लेखना, भक्तप्रत्याख्यान, पादपोपगमन, देवलोकगमन, सुकुलप्रत्यागमन, पुनः बोधिलाभ और अन्तक्रिया का कथन किया गया है।

उपासकदशा में उपासकों (श्रावकों) के ऋद्धिविशेष, परिषद, विस्तृत धर्मश्रवण, बोधिलाभ आदि के क्रम से अक्षय सर्व-दुःखमुक्ति का वर्णन है।

अङ्गों के क्रम में सातवां अङ्ग है—१ श्रुतस्कन्ध, १० अध्ययन, १० उद्देशनकाल, १० समुद्देशनकाल और संख्यात लाख पद हैं। शेष वाचनादि का कथन आचाराङ्गवत् है।

२. **नन्दीसूत्र में**[3]—इसमें प्रायः समवायाङ्गवत् वर्णन है। क्रम में अन्तर है। उपासकों के ऋद्धिविशेष, परिषद आदि वाला अंश यहां नहीं है। पद-संख्या संख्यात सहस्र बतलाई है।

३. **विधिमार्गप्रपा में**[4]—इसमें एक श्रुतस्कन्ध तथा १० अध्ययन हैं। अध्ययनों के नाम

---

१. स्थानाङ्गसूत्र १०.११२।

२. समवायाङ्गसूत्र ५३५-५३८।

३. नन्दीसूत्र ५२।

४. विधिमार्गप्रपा पृ० ५६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं—१. आनन्द, २. कामदेव, ३. चूलनीपिता, ४. सुरादेव, ५. चुल्लशतक, ६. कुंडकोलिक, ७. सद्दलपुत्र, ८. महाशतक, ९. नन्दिनीपिता और १०. लेतिआपिता।

(ख) दिगम्बर ग्रन्थों में—

१. **तत्त्वार्थवार्तिक में**[1]—श्रावकधर्म का कथन है।

२. **धवला में**[2]—उपासकाध्ययन में ११७०००० पद हैं जिनमें दर्शनिक, व्रतिक, सामायिकी, प्रोषधोपवासी, सचित्तविरत, रात्रिभुक्तिविरत, ब्रह्मचारी, आरम्भविरत, परिग्रहविरत, अनुमतिविरत और उद्दिष्टविरत इन ११ प्रकार के उपासकों के (श्रावकों के) लक्षण, उनके व्रतधारण करने की विधि तथा आचरण का वर्णन है।

३. **जयधवला में**[3]—दर्शनिक आदि ११ प्रकार के उपासकों के ग्यारह प्रकार के धर्म का वर्णन उपासकाध्ययन में है।

४. **अङ्गप्रज्ञप्ति में**[4]—उपासकाध्ययन में ११७००० पद हैं जिनमें दर्शनिक आदि ११ प्रकार के देशविरतों (श्रावकों) के श्रद्धा, दान, पूजा, संघसेवा, व्रत, शीलादि का कथन है।

(ग) वर्तमान रूप—

इसमें उपासकों के आचारादि का वर्णन है। उपोद्घात ज्ञाताधर्मकथावत् है। आनन्द आदि जिन १० उपासकों के नाम स्थानाङ्ग और विधिमार्गप्रपा में हैं उनकी ही कथायें इसमें हैं। सभी कथायें एक जैसी हैं उनमें केवल नामादि का अन्तर है।

(घ) तुलनात्मक विवरण—

यह एकमात्र ऐसा अङ्गग्रन्थ है जिसमें उपासकों के आचार आदि का वर्णन किया गया है, ऐसा दिग० और श्वे० दोनों के उल्लेखों से प्रमाणित होता है। 'दशा' शब्द १० संख्या का बोधक है। इस तरह यह अङ्ग-ग्रन्थ स्वनामानुरूप है। धवला और जयधवला में उपासकों की ११ प्रतिमाओं का भी उल्लेख है परन्तु तत्त्वार्थवार्तिक में ऐसा उल्लेख नहीं है। समवायाङ्ग और नन्दी में 'प्रतिमा' शब्द तो मिलता है परन्तु प्रतिमा के दर्शनिक आदि नाम नहीं हैं। शीलव्रत आदि शब्दों का भी प्रयोग समवायाङ्ग और नन्दी में मिलता है। समवायाङ्ग और नन्दी में आनन्द आदि १० उपासकों के नामों का उल्लेख तो नहीं है परन्तु १० अध्ययन सख्या से १० उपासकों की पुष्टि होती है। दिग० इस विषय में चुप हैं। वर्तमान आगम में स्थानाङ्गोक्त आनन्द आदि १० उपासकों की ही कथायें हैं।

पदसंख्या से सम्बन्धित तीन प्रकार के उल्लेख हैं—(१) समवायाङ्ग में संख्यात लाख, (२) नन्दी में संख्यात सहस्र और (३) धवला में ११ लाख ७० हजार।

---

१. तत्त्वार्थ० १.२० पृ० ७३।
२. धवला १.१.१ पृ० १०३।
३. जयधवला गाथा १ पृ० ११८।
४. अंगप्रज्ञप्ति गाथा ४५-४७ पृ० २६६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपोद्घातादि से यह अपेक्षाकृत परवर्ती रचना सिद्ध होती है। श्रावकधर्म का प्रतिपादक यह प्राचीनतम ग्रन्थ रहा है ऐसा उभय परम्परानुमत है।

८—अन्तकृद्दशा

(क) श्वेताम्बर ग्रन्थों में—

१. स्थानाङ्ग में[1]—इसमें १० अध्ययन हैं—नमि, मातंग, सोमिल, रामगुप्त, सुदर्शन, जमाली, भगाली, किंकष, चिल्वक (चिल्लक), पाल और अंबडपुत्र।

२. समवायाङ्ग में[2]—इसमें कर्मों का अन्त करने वाले अन्तकृतों के नगर, उद्यान, चैत्य, वनखण्ड, राजा, माता-पिता, समवसरण, धर्माचार्य, धर्मकथा, इहलौकिक-पारलौकिक ऋद्धिविशेष, भोग-परित्याग, प्रव्रज्या, श्रुतपरिग्रह, तप-उपधान, बहुत प्रकार की प्रतिमायें, क्षमा, आर्जव, मार्दव, सत्य, शौच, सत्रह प्रकार का संयम, ब्रह्मचर्य, आकिंचन्य, तप, त्याग समितियों तथा गुप्तियों का वर्णन है। अप्रमादयोग, स्वाध्याय और ध्यान का स्वरूप, उत्तम संयम को प्राप्त करके परीषहों को सहन करने वालों को चार घातियाँ कर्मों के क्षय से प्राप्त केवल ज्ञान, कितने काल तक श्रमण पर्याय और केवलि पर्याय का पालन किया, किन मुनियों ने पादोपगमसंन्यास लिया और कितने भक्तों का छेदनकर अन्तकृत मुनिवर अज्ञानान्धकार से विप्रमुक्त हो अनुत्तर मोक्षसुख को प्राप्त हुए, उन सबका विस्तार से वर्णन है।

अङ्गों के क्रम में यह आठवाँ अङ्ग है। इसमें १ श्रुतस्कन्ध, १० अध्ययन, ७ वर्ग, १० उद्देशनकाल, १० समुद्देशनकाल और संख्यात हजार पद हैं।

शेष वाचनादि का कथन आचाराङ्गवत् है।

३. नन्दीसूत्र में[3]—इसमें अन्तकृतों के नगर, उद्यान, चैत्य, वनखण्ड, समवसरण, राजा, माता-पिता, धर्माचार्य, धर्मकथा, इहलोक-परलोक ऋद्धिविशेष, भोग-परित्याग, प्रव्रज्या, पर्याय (दीक्षा पर्याय), श्रुतपरिग्रह, तपोपधान, सल्लेखना, भक्तप्रत्याख्यान, पादपोपगमन और अन्तक्रिया (शैलेशी-अवस्था) का वर्णन है। इस आठवें अङ्ग में एक श्रुतस्कन्ध, ८ वर्ग, ८ उद्देशनकाल और ८ समुद्देशनकाल हैं। शेष वाचनादि का कथन आचाराङ्गवत् है।

४. विधिमार्गप्रपा में[4]—इस आठवें अङ्ग में १ श्रुतस्कन्ध तथा ८ वर्ग हैं। प्रत्येक वर्ग में क्रमशः १०,८,१३,१०,१०,१६,१३ और १० अध्ययन हैं।

(ख) दिगम्बर ग्रन्थों में—

१. तत्त्वार्थवार्त्तिक में[5]—जिन्होंने संसार का अन्त कर दिया है उन्हें अन्तकृत कहते हैं।

---

१. स्थानाङ्गसूत्र १०.११३।
२. समवायाङ्गसूत्र ५३९-५४२।
३. नन्दीसूत्र ५३।
४. विधिमार्गप्रपा, पृ० ५६।
५. तत्त्वार्थ० १.२० पृ० ७३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चौबीसों तीर्थङ्करों के समय में होने वाले १०-१० अन्तकृत अनगारों का वर्णन है जिन्होंने दारुण उपसर्गों को सहनकर मुक्ति प्राप्त की। भगवान् महावीर के समय के १० अन्तकृत हैं—नमि, मतङ्ग, सोमिल, रामपुत्र, सुदर्शन, यमलीक, वलीक, किष्कम्बल, पाल और अम्बष्ठपुत्र।

अन्तकृतों की दशा अन्तकृद्दशा है, अतः इसमें अर्हत्, आचार्य और सिद्ध होने वालों की विधि का वर्णन है।

२. धवला में[1]—२३२८००० पदों के द्वारा इसमें प्रत्येक तीर्थङ्कर के तीर्थ में नाना प्रकार के दारुण उपसर्गों को सहनकर, प्रातिहार्यों (अतिशय-विशेषों) को प्राप्तकर निर्वाण को प्राप्त हुए १०-१० अन्तकृतों का वर्णन है। तत्त्वार्थभाष्य में कहा है—"संसारस्यान्तःकृतो येस्तेऽन्तकृतः" (जिन्होंने संसार का अन्त कर दिया है, वे अन्तकृत हैं। वर्धमान तीर्थङ्कर के तीर्थ में होने वाले १० अन्तकृत हैं—नमि, मतङ्ग, सोमिल, रामपुत्र, सुदर्शन, यमलीक, वलीक, किष्कंबिल, पालम्ब और अष्टपुत्र। इसी प्रकार ऋषभदेव आदि तीर्थङ्करों के तीर्थ में दूसरे १०-१० अन्तकृत हुए हैं। इन सबकी दशा का इसमें वर्णन हैं।

३. जयधवला में[2]—इसमें प्रत्येक तीर्थङ्कर के तीर्थ में चार प्रकार के दारुण उपसर्गों को सहन कर और प्रातिहार्यों को प्राप्तकर निर्वाण को प्राप्त हुए सुदर्शन आदि १०-१० साधुओं का वर्णन है।

४. अङ्गप्रज्ञप्ति में[3]—अन्तकृत में २३२८००० पद हैं, जिनमें प्रत्येक तीर्थङ्कर के तीर्थ के १०-१० अन्तकृतों का वर्णन है। वर्धमान तीर्थङ्कर के तीर्थ के १० अन्तकृतों के नाम धवलावत् है—मातंग, रामपुत्र, सोमिल, यमलीक, किष्कंबी, सुदर्शन, वलोक, नमि, पाल और अष्ट (मूल में "अलंबद्ध" पद का प्रयोग है जिसकी संस्कृत छाया पालम्बष्ट की है)।

(ग) वर्तमान रूप—

अन्तकृत शब्द का अर्थ है—संसार का अन्त करने वाले। इसका उपोद्घात ज्ञाताधर्मकथावत् है। इसमें ८ वर्ग हैं—

प्रथम वर्ग—इसमें गौतम, समुद्र, सागर, गम्भीर, थिमिअ, अयल, कंपिल्ल, अक्षोभ, पसेणई और विष्णु इन अन्धकवृष्णि के १० पुत्रों से सम्बन्धित १० अध्ययन हैं। **द्वितीय वर्ग**—इसमें १० मुनियों के १० अध्ययन हैं। **तृतीय वर्ग**—इसमें १३ मुनियों के १३ अध्ययन हैं। **चतुर्थ वर्ग**—इसमें जालि आदि १० मुनियों के १० अध्ययन हैं। **पंचम वर्ग**—इसमें पद्मावती आदि १० अन्तकृत स्त्रियों के नामवाले १० अध्ययन हैं। **षष्ठ वर्ग**—इसमें १६ अध्ययन हैं। **सप्तम वर्ग**—इसमें १३ अध्ययन हैं, जिनमें अन्तकृत स्त्रियों (साध्वियों) की कथायें हैं। **अष्टम वर्ग**—इसमें राजा श्रेणिक की काली आदि १० अन्तकृत स्त्रियों (साध्वियों) से सम्बन्धित १० अध्ययन हैं।

इन आठ वर्गों को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है। जैसे (१) प्रथम पाँच वर्ग कृष्ण और वासुदेव से सम्बन्धित व्यक्तियों की कथा से सम्बन्धित हैं, (२) षष्ठ और सप्तम वर्ग भगवान्

१. धवला १.१.२, पृ० १०३-१०४।
२. जयधवला गाथा, १, पृ० ११८।
३. अङ्गप्रज्ञप्ति गाथा ४८-५१, पृ० २६७.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महावीर के शिष्यों की कथा से सम्बन्धित हैं तथा (३) अष्टम वर्ग राजा श्रेणिक की काली आदि १० भार्याओं की कथा से सम्बन्धित हैं।

(घ) तुलनात्मक विवरण—

स्थानाङ्ग, तत्त्वार्थवार्तिक, धवला, जयधवला और अङ्गप्रज्ञप्ति में नमि आदि भगवान् महावीर कालीन १० अन्तकृतों के नाम प्रायः एक समान मिलते हैं जिससे ज्ञात होता है कि मूल में इनका वर्णन रहा है। समवायाङ्ग, नन्दी और विधिमार्गप्रपा में इन नामों का उल्लेख नहीं मिलता है। दिगम्बर ग्रन्थों में एक स्वर से कहा गया है कि इसमें न केवल भगवान् महावीर-कालीन १० अन्तकृतों का वर्णन रहा है अपितु चौबीसों तीर्थङ्करों के काल के १०-१० अन्तकृतों का वर्णन रहा है। वर्तमान ग्रन्थ में न तो १० अध्ययन हैं और न नमि आदि अन्तकृतों का वर्णन है। यह परवर्ती रचना है जिसमें नमि और महावीर-कालीन कुछ अन्तकृतों का वर्णन है परन्तु पूर्वोक्त नमि आदि नामों से भिन्नता है।

स्थानाङ्ग से इसके केवल १० अध्ययनों का बोध होता है जबकि समवायाङ्ग से १० अध्ययनों के अतिरिक्त ७ वर्गों का भी बोध होता है। नन्दी में केवल ८ वर्गों का उल्लेख है, अध्ययनों का नहीं। विधिमार्गप्रपा में ८ वर्गों और उसके अवान्तर अध्ययनों का कथन है जो वर्तमान आगम के अनुरूप है सिर्फ द्वितीय वर्ग की अध्ययनसंख्या में अन्तर है।

९—अनुत्तरौपपातिकदशा

(क) श्वेताम्बर ग्रन्थों में—

१. स्थानाङ्ग में[1]—अनुत्तरौपपातिकदशा में १० अध्ययन हैं—ऋषिदास, धन्य, सुनक्षत्र, कार्तिक, संस्थान, शालिभद्र, आनन्द, तेतली, दशार्णभद्र और अतिमुक्त।

२. समवायाङ्ग में[2]—अनुत्तरौपपातिकदशा में अनुत्तर विमानों में उत्पन्न होनेवाले महापुरुषों के नगर, उद्यान, चैत्य, वनखण्ड, राजा, माता-पिता, समवसरण, धर्माचार्य, धर्मकथा, इहलौकिक-पारलौकिक ऋद्धियाँ, भोग-परित्याग, प्रव्रज्या, श्रुतपरिग्रह, तपोपधान, पर्याय, प्रतिमा, सल्लेखना, भक्तप्रत्याख्यान, पादपोपगमन, अनुत्तर विमानों में उत्पाद, सुकुलोत्पत्ति, पुनः बोधिलाभ और अन्तक्रिया का वर्णन है।

परम मंगलकारी, जगत् हितकारी तीर्थङ्करों के समवसरण आदि का वर्णन है। उत्तम ध्यान योग से युक्त होते हुए जीव जिस प्रकार अनुत्तर विमानों में उत्पन्न होते हैं, वहाँ जैसे विषयसुख का भोग करते हैं उन सबका वर्णन इसमें किया गया है। पश्चात् वहाँ से च्युत होकर वे जिस प्रकार संयम धारणकर अन्तक्रिया करेंगे उस सबका वर्णन है।

इस नवम अङ्ग में एक श्रुतस्कन्ध, दस अध्ययन, तीन वर्ग, दश उद्देशनकाल, दश समुद्देशनकाल और संख्यात लाख पद हैं। शेष वाचनादि का कथन आचाराङ्गवत् है।

३. नन्दीसूत्र में[3]—इसमें अनुत्तरौपपातिकों के नगरादि का वर्णन है। १ श्रुतस्कन्ध,

---

१. स्थानाङ्गसूत्र १०.११४.

२. समवा० सूत्र ५४२-५४५.

३. नन्दीसूत्र ५४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३ वर्ग, ३ उद्देशनकाल, ३ समुद्देशनकाल तथा संख्यात सहस्र पद हैं। शेष वाचनादि का कथन आचाराङ्गवत् है।

४. **विधिमार्गप्रपा में**[1]—इसमें १ श्रुतस्कन्ध और ३ वर्ग हैं। प्रत्येक वर्ग में क्रमशः १०, १३ और १० अध्ययन हैं। जालि आदि अध्ययनों के नाम हैं।

(ख) दिगम्बर ग्रन्थों में—

१. **तत्त्वार्थवार्तिक में**[2]—देवों का उपपाद जन्म होता है। विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्धि ये पांच अनुत्तर देवों के विमान हैं। प्रत्येक तीर्थङ्कर के तीर्थ में अनेक प्रकार के दारुण उपसर्गों को सहनकर पूर्वोक्त अनुत्तर विमानों में उत्पन्न होने वाले १०-१० मुनियों का इसमें वर्णन होने से इसे अनुत्तरौपपादिक कहते हैं। महावीर के तीर्थ के १० अनुत्तरौपपातिक हैं—ऋषिदास, वान्य, सुनक्षत्र, कार्तिक, नन्द, नन्दन, शालिभद्र, अभय, वारिषेण और चिलातपुत्र।

अथवा अनुत्तरौपपादिकों की दशा, आयु, विक्रिया आदि का इसमें वर्णन है।

२. **धवला में**[3]—इसमें ९२४४००० पद हैं, जिनमें प्रत्येक तीर्थङ्कर के तीर्थ में उत्पन्न होने वाले १०-१० अनुत्तरौपपादिकों का वर्णन है। महावीर के तीर्थ में उत्पन्न होने वाले १० अनुत्तरौपपादिकों के नाम 'उक्तं च तत्त्वार्थभाष्ये' कहकर तत्त्वार्थभाष्यानुसार दिए हैं।

३. **जयधवला में**[4]—इसमें चौबीस तीर्थंकरों के तीर्थ में चार प्रकार के दारुण उपसर्ग सहनकर अनुत्तर विमान को प्राप्त हुए १०-१० मुनिवरों का वर्णन है।

४. **अङ्गप्रज्ञप्ति में**[5]—इसमें ९२४४००० पदों के द्वारा प्रत्येक तीर्थंकर के तीर्थ में उत्पन्न १०-१० अनुत्तरौपपादिकों का वर्णन है। वर्धमान तीर्थंकर के तीर्थ के १० अनुत्तरौपपादिक मुनि हैं—ऋजुदास, शालिभद्र, सुनक्षत्र, अभय, धन्य, वारिषेण, नन्दन, नन्द, चिलातपुत्र और कार्तिकेय।

(ग) वर्तमान रूप—

उपपाद जन्म वाले देव औपपातिक कहलाते हैं। बिजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्धि के वैमानिक देव अनुत्तर (श्रेष्ठ) कहलाते हैं। अतः जो उपपाद जन्म से अनुत्तरों में उत्पन्न होते हैं, उन्हें अनुत्तरौपपातिक कहते हैं। इस तरह इसमें अनुत्तरों में उत्पन्न होने वाले मनुष्यों की दशा का वर्णन है। इसके तीन वर्ग हैं जिनमें ३३ अध्ययन हैं—

प्रथम वर्ग—जालि, मयालि, उपजालि, पुरुषसेन, वारिषेण, दीर्घदन्त, लष्टदन्त, वेहल्ल, वेहायस और अभयकुमार से सम्बन्धित १० अध्ययन हैं।

द्वितीय वर्ग—दीर्घसेन, महासेन, लष्टदन्त, गूढदन्त, शुद्धदन्त, हल्ल, द्रुम, द्रुमसेन, महाद्रुमसेन, सिंह, सिंहसेन, महासिंहसेन और पुष्पसेन से सम्बन्धित १३ अध्ययन हैं।

तृतीय वर्ग—धन्यकुमार, सुनक्षत्रकुमार, ऋषिदास, पेल्लक, रामपुत्र, चन्द्रिक, पृष्टिमातृक, पेढालपुत्र, पोट्टिल्ल और वेहल्ल से सम्बन्धित १० अध्ययन हैं।

---

१. विधिमार्गप्रपा, पृ० ५६.
२. तत्त्वार्थ० १.२०, पृ० ७३.
३. धवला १.१.२, पृ० १०४-१०५।
४. जयधवला गाथा १, पृ० ११९।
५. अङ्गप्रज्ञप्ति गाथा ५२-५५, पृ० २६७-२६८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(घ) तुलनात्मक विवरण

दिगम्बर उल्लेखों से ज्ञात होता है कि यह ग्रन्थ भी अन्तकृत-दशा की तरह २४ तीर्थंकरों के तीर्थ में होने वाले १०-१० अनुत्तरौपपादिकों का वर्णन करता है। भगवान् महावीर के काल के जिन १० अनुत्तरौपपादिकों के नामों का उल्लेख दिगम्बर ग्रन्थों में मिलता है उनमें से ५ नाम स्थानाङ्ग में शब्दशः मिलते हैं। स्थानाङ्ग और समवायाङ्ग में इसके १० अध्ययनों का उल्लेख है। स्थानाङ्ग में नाम गिनाए हैं और समवायाङ्ग में नहीं। इसके अतिरिक्त समवायाङ्ग में तीन वर्गों का भी उल्लेख है परन्तु उद्देशन और समुद्देशन काल १० ही बतलाया है जो चिन्त्य है। नन्दी में अध्ययनों का उल्लेख ही नहीं है उसमें तीन वर्ग और तीन उद्देशन कालादि का ही कथन है। विधिमार्गप्रपा में तीन वर्गों के साथ उसके ३३ अध्ययनों का भी निर्देश है जिनका वर्तमान आगम के साथ साम्य है। वर्तमान ग्रन्थ में केवल ३ नाम ऐसे हैं जो स्थानाङ्ग और दिग० ग्रन्थों में एक साथ उक्त हैं। पद संख्या, समवायाङ्ग, नन्दी और दिग० ग्रन्थों में भिन्न-भिन्न है। ज्ञाताधर्मकथा की तरह इसमें उपोद्घात भी है। इन सब कारणों से यह परवर्ती रचना सिद्ध होती है।

१०—प्रश्नव्याकरण

(क) श्वेताम्बर ग्रन्थों में—

१. **स्थानाङ्ग में**[1]—इसमें १० अध्ययन हैं—उपमा, संख्या, ऋषिभाषित, आचार्यभाषित, महावीरभाषित, क्षौमिकप्रश्न, कोमलप्रश्न, आदर्शप्रश्न, अंगुष्ठप्रश्न और बाहुप्रश्न।

२. **समवायाङ्ग में**[2]—इसमें १०८ प्रश्न, १०८ अप्रश्न, १०८ प्रश्नाप्रश्न, विद्यातिशय तथा नाग-सुपर्णों के साथ दिव्यसंवाद हैं। स्वसमय-परसमय के प्रज्ञापक प्रत्येक बुद्धों के विविध अर्थों वाली भाषाओं के द्वारा कथित वचनों का, आचार्यभाषितों का, वीरमहर्षियों के सुभाषितों का, आदर्श (दर्पण), अंगुष्ठ, बाहु, असि, मणि, क्षौम (वस्त्र) और आदित्य (सूर्य)-भाषितों का, अबुधजनों को प्रबोधित करने वाले प्रत्यक्ष प्रतीतिकारक प्रश्नों के विविध गुण और महान् अर्थवाले जिनवर-प्रणीत उत्तरों का इसमें वर्णन है।

अङ्गों के क्रम में यह १०वाँ अङ्ग है। इसमें १ श्रुतस्कन्ध, ४५ उद्देशनकाल, ४५ समुद्देशन-काल और संख्यात लाख पद हैं।

शेष वाचनादि का कथन आचाराङ्गवत् है।

३. **नन्दीसूत्र में**[3]—इसमें १०८ प्रश्न, १०८ अप्रश्न, १०८ प्रश्नाप्रश्न हैं। जैसे—अंगुष्ठप्रश्न, बाहुप्रश्न, आदर्शप्रश्न, अन्य विचित्र विद्यातिशय तथा नाग-सुपर्णों के साथ दिव्य संवाद।

श्रुतस्कन्ध-संख्या आदि का कथन समवायाङ्गवत् ही बतलाया है परन्तु यहाँ ४५ अध्ययन और संख्यात् सहस्रपदसंख्या बतलाई है।

---

१. स्थानाङ्गसूत्र १०.११६।

२. समवा० सूत्र ५४६-५४९।

३. नन्दीसूत्र ५५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. विधिमार्गप्रपा में[1]—इसमें १ श्रुतस्कन्ध है। इसके १० अध्यायों के क्रमशः नाम हैं—हिंसाद्वार, मृषावादद्वार, स्तेनितद्वार, मैथुनद्वार, परिग्रहद्वार, अहिंसाद्वार, सत्यद्वार, अस्तेनितद्वार, ब्रह्मचर्यद्वार और अपरिग्रहद्वार। यहाँ कोई ५-५ अध्ययनों के दो श्रुतस्कन्ध भी बतलाते हैं।

(ख) दिगम्बर ग्रन्थों में—

१. तत्त्वार्थवार्तिक में[2]—"प्रश्नानां व्याकरणं प्रश्नव्याकरणम्"। इसमें युक्ति और नयों के द्वारा अनेक आक्षेप और विक्षेपरूप प्रश्नों के उत्तर हैं जिनमें सभी लौकिक और वैदिक अर्थों का निर्णय किया गया है।

२. **धवला में**[3]—इसमें ९३१६००० पद हैं जिनमें आक्षेपिणी (तत्त्वनिरूपिका) विक्षेपणी, (स्वसमयस्थापिका), संवेदनी (धर्मफलनिरूपिका) और निर्वेदनी (वैराग्यजनिका) इन चार प्रकार की कथाओं का वर्णन है। आक्षेपिणी आदि कथाओं का स्वरूप तथा कौन किस प्रकार की कथा का अधिकारी है? इसका भी यहाँ उल्लेख किया गया है। अन्त में प्रश्न के अनुसार हृत, नष्ट, मुष्टि, चिन्ता, लाभ, अलाभ, सुख, दुःख, जीवित, मरण, जय, पराजय, नाम, द्रव्य, आयु और संख्या का भी प्ररूपण है।

३. जयधवला में[4]—पदसंख्या को छोड़कर शेष कथन प्रायः धवलावत् है।

४. अङ्गप्रज्ञप्ति में[5]—इसका विवेचन धवलावत् है।

(ग) वर्तमान रूप—

इसमें पांच आस्रवद्वार और पांच संवरद्वाररूप १० अध्ययन हैं जिनमें क्रमशः हिंसा, झूठ, अदत्तादान, अब्रह्मचर्य, परिग्रह, अहिंसा, सत्य, अदत्तादग्रहण, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का वर्णन है। उपोद्घात ज्ञाताधर्मकथा की ही तरह है। इसमें प्रश्नों के व्याकरण (उत्तर) नहीं हैं।

(घ) तुलनात्मक विवरण—

उपलब्ध आगम सर्वथा नवीन रचना है क्योंकि इसमें न तो ग्रन्थ के नामानुसार प्रश्नोत्तर शैली है और न उपलब्ध प्राचीन उल्लेखों से कोई साम्य है। वर्तमान रचना केवल विधिमार्गप्रपा के वक्तव्य से मेल रखती है। विधिमार्गप्रपा बहुत बाद की रचना है जो उपलब्ध आगम को दृष्टि में रखकर लिखी गई है अन्यथा यहाँ नन्दी को आधार होना चाहिए था। स्थानाङ्ग में जिन १० अध्ययनों का उल्लेख है उनसे वर्तमान १० अध्ययनों का दूर तक कोई साम्य नहीं है। नन्दी और समवायाङ्ग में जिन विद्यातिशयों का उल्लेख है वे भी नहीं हैं। इस सन्दर्भ में वृत्तिकार अभयदेव का यह कथन कि "अनधिकारी चमत्कारी-विद्यातिशयों का प्रयोग न करें। अतः उन्हें हटा दिया गया है", समुचित नहीं है क्योंकि कुछ तो अवशेष अवश्य मिलते। उपोद्घात भी इसे नूतन रचना सिद्ध करता है।

---

१. विधिमार्गप्रपा, पृ० ५६।
२. तत्त्वार्थ० १.२०, पृ० ७३-७४।
३. धवला १.१.२, पृ० १०५-१०८।
४. जयधवला गाथा १, पृ० ११९।
५. अङ्गप्रज्ञप्ति गाथा ५६-६७, पृ० २६८-२७०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थानाङ्ग में १० अध्ययन गिनाए हैं और नन्दी में ४५ अध्ययन। समवायाङ्ग में अध्ययनों का उल्लेख तो नहीं है परन्तु उसके ४५ उद्देशन और समुद्देशन काल बतलाए हैं जिससे इसके ४५ अध्ययनों की कल्पना की जा सकती है। समवायाङ्ग के ५४·२९२वें समवाय में कहा है कि भगवान् महावीर ने एक दिन में एक आसन से बैठे हुए ५४ प्रश्नों के उत्तर रूप व्याख्यान दिए। यहाँ कथित ५४ संख्या चिन्त्य है। समवायाङ्ग, नन्दी और दिगम्बर ग्रन्थों में पद-संख्या भिन्न-भिन्न है। दिग० ग्रन्थों के उल्लेखों से ज्ञात होता है कि इसमें आक्षेप-विक्षेप के जनक प्रश्नों के उत्तर थे तथा लौकिक एवं वैदिक शब्दों का नयानुसार शब्दार्थ-निर्णय था। स्थानाङ्ग में कथित क्षौमिक प्रश्न आदि से भी इसकी पुष्टि होती है। सम्भवतः इसके ऋषिभाषित, आचार्यभाषित और महावीरभाषित अंश स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप में प्रसिद्ध हैं।

११—विपाकसूत्र

(क) श्वेताम्बर ग्रन्थों में—

१. स्थानाङ्ग में[1]—कर्मविपाक के १० अध्ययन हैं—मृगापुत्र, गोत्रास, अण्ड, शकट, ब्राह्मण, नन्दिषेण, शौरिक, उदुम्बर, सहस्रोद्दाह, आमरक और कुमारलिच्छवी।

२. समवायाङ्ग में[2]—दुष्कृत और सुकृत कर्मों के फलों का वर्णन होने से यह दो प्रकार का है—दुःखविपाक और सुखविपाक। प्रत्येक के १०-१० अध्ययन हैं। दुःखविपाक में दुष्कृतों के नगरादि का वर्णन है तथा सुखविपाक में सुकृतों के नगरादि का वर्णन है। प्राणातिपात, असत्य-वचन आदि पाप कर्मों से नरकादि गतिप्राप्तिरूप दुःखविपाक होता है। शील, संयम आदि शुभ भावों से देवादिगति-प्राप्ति (परम्परया मोक्ष-प्राप्ति) रूप सुखविपाक होता है। ये दोनों विपाक संवेग में कारण हैं।

अङ्गों के क्रम में यह ग्यारहवाँ अङ्ग है। इसमें २० अध्ययन, २० उद्देशनकाल, २० समुद्देशनकाल और संख्यात लाख पद हैं।

शेष वाचनादि का कथन आचाराङ्गवत् है।

३. नन्दीसूत्र में[3]—प्रायः समवायाङ्गवत् कथन है। इसमें दो श्रुतस्कन्ध तथा संख्यात-सहस्र पद कहे हैं।

४. विधिमार्गप्रपा में[4]—इसमें दो श्रुतस्कन्ध हैं। प्रथम दुःखविपाक श्रुतस्कन्ध में १० अध्ययन हैं—मृगापुत्र, उज्झितक, अभग्नसेन, शकट, बृहस्पतिदत्त, नन्दिवर्धन, उंबरिदत्त, शौरिक-दत्त, देवदत्ता और अंजु। द्वितीय सुखविपाक श्रुतस्कन्ध के १० अध्ययन हैं—सुबाहु, भद्रनन्दि, सुजात, सुवासव, जिनदास, धनपति, महाबल, भद्रनन्दि, महाचन्द्र और वरदत्त।

---

१. स्थानाङ्गसूत्र १०.१११।

२. समवायाङ्गसूत्र ५५०-५५६।

३ नन्दीसूत्र ५६।

४. विधिमार्गप्रपा पृ० ५६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(ख) दिगम्बर ग्रन्थों में—

१. तत्त्वार्थवार्तिक में[1]—इसमें पुण्य और पाप कर्मों के फल (विपाक) का विचार किया गया है।

२. धवला में[2]—इसमें १८४००००० पद हैं जिनमें पुण्य और पाप कर्मों के विपाक (फल) का वर्णन है।

३. जयधवला में[3]—इसमें द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव का आश्रय लेकर शुभाशुभ कर्मों के विपाक का वर्णन है।

४. अङ्गप्रज्ञप्ति में[4]—धवला-जयधवलावत् कथन है।

(ग) वर्तमानरूप—

इसमें ज्ञाताधर्मकथावत् उपोद्घात है। विपाक का अर्थ है "कर्मफल"। यहाँ इन्द्रभूति गौतम संसार के प्राणियों को दुःखी देखकर भगवान् महावीर से उसका कारण पूछते हैं। भगवान् महावीर पापरूप और पुण्यरूप कर्मों के फलों का कथन करके धर्मोपदेश देते हैं। इसमें दो श्रुतस्कन्ध हैं— (१) **दुःखविपाक**—इसमें १० अध्ययन हैं जिनमें क्रमशः मृगापुत्र, उज्झितक (कामध्वजा), अभग्नसेन (चोर), शकट, बृहस्पतिदत्त (पुरोहितपुत्र), नन्दिवर्धन, उम्बरदत्त (वैद्य), शोरिक (सोरियदत्त मछलीमार), देवदत्ता और अंजु की कथाएँ हैं। इनमें पाप कर्मों के परिणामों का कथन है। (२) **सुखविपाक**—इसमें १० अध्ययन हैं जिनमें क्रमशः सुबाहुकुमार, भद्रनन्दी, सुजातकुमार, सुवासवकुमार, जिनदास, धनपति, महाबल, भद्रनन्दी, महाचन्द्र और वरदत्तकुमार की कथाएँ हैं। इनमें पुण्यकर्मों के परिणामों का कथन है।

यहाँ इतना विशेष है कि दुःखविपाक में असत्यभाषी और महापरिग्रही की तथा सुखविपाक में सत्यभाषी और अल्पपरिग्रही की कथायें नहीं हैं जो चिन्त्य हैं।

(घ) तुलनात्मक विवरण --

दिग० और श्वे० दोनों के उल्लेखों से इतना तो निश्चित है कि इसमें कर्मों के दुःखविपाक और सुखविपाक का विवेचन रहा है। यद्यपि इसमें कर्मों के दुःखविपाक और सुखविपाक का ही विवेचन है परन्तु इसकी मूलरूपता चिन्त्य है। समवायाङ्ग, नन्दी और विधिमार्गप्रपा के अनुसार अध्ययनों की तो संगति बैठ जाती है परन्तु समवायाङ्ग में इसके दो श्रुतस्कन्धों का उल्लेख नहीं है। स्थानाङ्ग में १० अध्ययन ही बतलाए हैं। यद्यपि वहाँ केवल कर्मविपाक शब्द का प्रयोग है, परन्तु वह सम्भवतः सम्पूर्ण विपाकसूत्र का प्रतिनिधि है अन्यथा दुःखविपाक और सुखविपाक के १०-१० अध्ययन पृथक्-पृथक् गिनाए जाते। वर्तमान दुःखविपाक के अध्ययनों के साथ स्था-

१. तत्त्वार्थ० १.२०, पृ० ७४।
२. धवला १.१.२, पृ० १०८।
३. जयधवला गाथा १, पृ० १२०।
४. अङ्गप्रज्ञप्ति गाथा ६८-६९, पृ० २७०-२७१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाङ्गोक्त १० अध्ययनों का पूर्ण साम्य नहीं है। समवायाङ्ग के ५५वें समवाय में कहा है—"भगवान् महावीर अन्तिम रात्रि में पुण्यफल-विपाकवाले ५५ और पापफल विपाकवाले ५५ अध्ययनों का प्रतिपादन करके सिद्ध, बुद्ध मुक्त हो गए।" इस कथन से प्रकृत ग्रन्थ-योजना संगत नहीं बैठती है। उपोद्घात भी इसकी परवर्तिता का सूचक है।

१२—दृष्टिवाद

(क) श्वेताम्बर ग्रन्थों में—

१. स्थानाङ्ग में—इसके ४ भेद गिनाए हैं—परिकर्म, सूत्र, पूर्वगत और अनुयोग।[१] दृष्टिवाद के १० नामों का भी उल्लेख है—दृष्टिवाद, हेतुवाद, भूतवाद, तच्चवाद (तत्त्ववाद या तथ्यवाद), सम्यग्वाद, धर्मवाद, भाषाविचय (भाषाविजय), पूर्वगत, अनुयोगगत और सर्वप्राणभूतजीवसत्त्वसुखावह।[२] इसके अतिरिक्त उत्पादपूर्व की १० वस्तु और आस्तिनास्तिप्रवाद पूर्व की १० चूलावस्तु का उल्लेख है परन्तु नाम नहीं गिनाए हैं।[३] द्रव्यानुयोग के १० प्रकार गिनाए हैं—द्रव्यानुयोग, मातृकानुयोग, एकार्थिकानुयोग, करणानुयोग, अर्पितानर्पितानुयोग, भाविताभावितानुयोग, बाह्याबाह्यानुयोग, शाश्वताशाश्वतानुयोग, तथाज्ञानानुयोग और अतथाज्ञानानुयोग।[४] अरिष्टनेमी के समय के चतुर्दशपूर्ववेत्ता मुनियों की संख्या ४०० बतलाई है।[५]

२. समवायाङ्ग में[६]—दृष्टिवाद में सब भावों की प्ररूपणा की जाती है। संक्षेप से वह ५ प्रकार का है—परिकर्म, सूत्र, पूर्वगत, अनुयोग और चूलिका।

(अ) **परिकर्म** ७ प्रकार का है—सिद्धश्रेणिका, मनुष्यश्रेणिका, पृष्टश्रेणिका, अवगाहनश्रेणिका, उपसंपद्यश्रेणिका, विप्रजहत्श्रेणिका और च्युताच्युतश्रेणिका। (१) **सिद्धश्रेणिका** के १४ भेद हैं—मातृकापद[७], एकार्थकपद, अर्थपद, पाठपद, आकाशपद, केतुभूत, राशिबद्ध, एकगुण, द्विगुण, त्रिगुण, केतुभूत प्रतिग्रह, संसारप्रतिग्रह, नन्द्यावर्त और सिद्धबद्धा। (२) **मनुष्यश्रेणिका** परिकर्म के ११ भेद हैं—मातृकापद से लेकर पूर्वोक्त नन्द्यावर्त तक तथा मनुष्यबद्ध। (३-७) **पृष्टश्रेणिका** परिकर्म से लेकर शेष सभी परिकर्म—इनके ११-११ भेद हैं। मूल में इनके भेद नहीं गिनाए हैं, परन्तु नन्दी में भेदों को गिनाया गया है। सम्भवतः समवायाङ्ग के अनुसार इनके भेद मनुष्यश्रेणिका परिकर्मवत् बनेंगे, अन्तिम भेद केवल बदलता जायेगा। पूर्वोक्त सातों परिकर्म स्वसामयिक (जैनमतानुसारी) हैं, सात आजीविका मतानुसारी हैं, छः परिकर्म चतुष्कनयवालों के हैं और सात त्रैराशिक

---

१. स्थानाङ्गसूत्र ४.१३१।
२. वही, १०.९२।
३. वही १०.६७-६८।
४. वही, १०.४७।
५. वहीं, ४.६४७।
६. समवा० सूत्र ५५७-५७०.
७. समवायाङ्ग के ४६वें समवाय में दृष्टिवाद के ४६ मातृकापदों का उल्लेख है परन्तु उनके नाम नहीं गिनाए हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मतानुसारी हैं। इस प्रकार ये सातों परिकर्म पूर्वापर भेदों की अपेक्षा ८३ (१४+१४+११+११+११+११+११) होते हैं।

(आ) सूत्र—ये ८८ होते हैं। जैसे—ऋजुक, परिणतापरिणत, बहुभंगिक, विजयचर्या, अनन्तर, परम्पर, समान, संजूह (संयूथ), संभिन्न, अहाच्चय, सौवस्तिक, नन्द्यावर्त, बहुल, पृष्टापृष्ट, व्यावृत्त, एवंभूत, द्वयावर्त, वर्तमानात्मक, समभिरूढ, सर्वतोभद्र, पणाम (पण्णास) और दुष्प्रतिग्रह। ये २२ सूत्र स्वसमयसूत्रपरिपाटी में छिन्नच्छेदनयिक हैं। ये ही २२ सूत्र आजीविका सूत्र परिपाटी से अच्छिन्नच्छेदनयिक हैं। ये ही २२ सूत्र त्रैराशिक सूत्र परिपाटी से त्रिकनयिक हैं और ये ही २२ सूत्र स्वसमय सूत्र परिपाटी से चतुष्कनयिक हैं। इस तरह कुल मिलाकर २२×४=८८ भेद सूत्र के हैं।

(इ) पूर्वगत—इसके १४ प्रकार हैं—१. उत्पादपूर्व, २. अग्रायणीयपूर्व, ३. वीर्यप्रवादपूर्व, ४. अस्तिनास्तिपूर्व, ५. ज्ञानप्रवादपूर्व, ६. सत्यप्रवादपूर्व, ७. आत्मप्रवादपूर्व, ८. कर्मप्रवादपूर्व, ९. प्रत्याख्यानप्रवादपूर्व, १०. विद्यानुप्रवादपूर्व, ११. अबन्ध्यपूर्व, १२. प्राणायुपूर्व, १३. क्रियाविशालपूर्व और १४. लोकबिन्दुसारपूर्व। पूर्वों की वस्तुएँ और चूलिकायें निम्न प्रकार हैं—

पूर्व क्रमाङ्क	श्वे० वस्तु	दिग० वस्तु	श्वे० चूलिका	दिग० चूलिका
१	१०	१०	४	०
२	१४	१४	१२	०
३	८	८	८	०
४	१८	१८	१०	०
५	१२	१२	०	०
६	२	१२	०	०
७	१६	१६	०	०
८	३०	२०	०	०
९	२०	३०	०	०
१०	१५	१५	०	०
११	१२	१०	०	०
१२	१३	१०	०	०
१३	३०	१०	०	०
१४	२५	१०	०	०

नोट—प्रथम ४ पूर्वों की ही श्वे० में चूलिकाएँ मानी गई हैं, शेष की नहीं। दिग० में ऐसा कोई उल्लेख नहीं है।

(ई) अनुयोग—यह दो प्रकार का है—**(क) मूलप्रथमानुयोग**—इसमें अर्हंतों के पूर्वभव, देवलोक गमन, देवायु, च्यवन, जन्म, जन्माभिषेक, राज्यवरश्री, शिविका, प्रव्रज्या, तप, भक्त (आहार) केवलज्ञानोत्पत्ति, वर्ण, तीर्थप्रवर्तन, संहनन, संस्थान शरीरउच्चता, आयु, शिष्यगण, गणधर, आर्या, प्रवर्तिनी, चतुर्विध संघ-परिमाण, केवलिजिन, मनःपर्ययज्ञानी, अवधिज्ञानी, सम्यक्-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रुतज्ञानी, वादी, अनुत्तरविमानों में उत्पन्न होने वाले साधु, सिद्ध, पादपोपगत, जो जहाँ जितने भक्तों का छेदनकर उत्तम मुनिवर अन्तकृत हुए, तमोरज से विप्रमुक्त हुए, अनुत्तरसिद्धिपथ को प्राप्त हुए, इन महापुरुषों का तथा इसी प्रकार के अन्य भाव मूल-प्रथमानुयोग में कहे गए हैं। (ख) **गंडिकानुयोग**—यह अनेक प्रकार का है। जैसे—कुलकरगंडिका, तीर्थंकरगंडिका, गणधर-गंडिका, चक्रवर्तीगंडिका, दशारगंडिका, बलदेवगंडिका, वासुदेवगंडिका, हरिवंशगंडिका, भद्रबाहु-गंडिका, तपःकर्मगंडिका, चित्रान्तरगंडिका, उत्सर्पिणीगंडिका, अवसर्पिणीगंडिका, देवमनुष्य-तिर्यञ्च और नरक गति में गमन, विविध योनियों में परिवर्तनानुयोग इत्यादि गंडिकाएँ इस गंडिका-नुयोग में कही जाती हैं।

(उ) **चूलिका**—आदि के चार पूर्वों की ही (पूर्वोक्त) चूलिकायें हैं, शेष पूर्वों की नहीं, यही चूलिका है।

अङ्गों के क्रम में यह १२वाँ अङ्ग है। इसमें एक श्रुतस्कन्ध, चौदह पूर्व, संख्यात वस्तु, संख्यात चूलावस्तु, संख्यात प्राभृत, प्राभृत-प्राभृत, प्राभृतिक, प्राभृत-प्राभृतिक हैं। पद संख्या संख्यात लाख है। शेष वचनादि का कथन आचाराङ्गवत् है।

३. नन्दीसूत्र में[1]—दृष्टिवाद में सर्वभावप्ररूपणा है। नन्दी में प्रायः समवायाङ्ग की तरह ही दृष्टिवाद की समग्र विषयवस्तु बतलाई गई है। कहीं-कहीं क्रम और नाम में यत्किंचित् परि-वर्तन दृष्टिगोचर होता है। यहाँ पृष्टश्रेणिका आदि परिकर्मों के भेद गिनाए हैं जबकि समवायाङ्ग में नहीं हैं। जैसे—**तृतीय पृष्टश्रेणिका परिकर्म**—इसके ११ भेद हैं—पृथगाकाशपद, केतुभूत, राशिबद्ध, एकगुण, द्विगुण, त्रिगुण, केतुभूत, प्रतिग्रह, संसार-प्रतिग्रह, नन्दावर्त और पृष्टावर्त्त। यहाँ केतुभूत दो बार आया है। **चतुर्थ अवगाढ़श्रेणिका (अवगाहनश्रेणिका) परिकर्म**—पृथगाकाश-पदादि दश तथा ओगाढावत्त। पंचम से सप्तम परिकर्म के प्रथम १० भेद पूर्ववत् होंगे तथा अंतिम स्वनामयुक्त होगा। जैसे क्रमशः—उपसंपादनावर्त, विप्रजहदावर्त, च्युताऽच्युतावर्त। इस तरह सम-वायाङ्ग के भेदों से कुछ अन्तर है। दृष्टिवाद की पदसंख्या यहाँ संख्यात सहस्र बतलाई है।

४. विधिमार्गप्रपा में[2]—दृष्टिवाद को उच्छिन्न बतलाकर यहाँ कुछ भी कथन नहीं किया है।

(ख) दिगम्बर ग्रन्थों में—

१. तत्त्वार्थवार्त्तिक में[3]—दृष्टिवाद में ३६३ जैनेतर दृष्टियों (कुवादियों) का निरूपण करके जैनदृष्टि से उनका खण्डन किया गया है। कौत्कल, काणेविद्धि, कौशिक, हरिस्मश्रु, मांछपिक, रोमश, हारीत, मुण्ड, आश्वलायन आदि क्रियावादियों के १८० भेद हैं। मरीचिकुमार, कपिल, उलूक, गार्ग्य, व्याघ्रभूति, वाद्वलि, माठर, मौद्गलायन आदि अक्रियावादियों के ८४ भेद हैं। साकल्य, वाल्कल, कुथुमि, सात्यमुग्र, नारायण, कठ, माध्यन्दिन, मौद, पैप्पलाद, बादरायण, अम्बष्ठि, कृदौविकायन, वसु, जैमिनि आदि अज्ञानवादियों के ६७ भेद हैं। वशिष्ठ, पराशर, जतुकर्णि, वाल्मीकि, रौमहर्षिणि, सत्यदत्त, व्यास, एलापुत्र, औपमन्यव, इन्द्रदत्त, अयस्थुण आदि वैनयिकों के ३२ भेद हैं। कुल मिलाकर ३६३ मतवाद हैं।

१. नन्दी सूत्र ५७।
२. विधिमार्गप्रपा पृ० ५६।
३. तत्त्वार्थ० १.२०, पृ० ७४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दृष्टिवाद के ५ भेद हैं—परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत और चूलिका। इन ५ भेदों में से केवल पूर्वगत के उत्पादपूर्व आदि १४ भेदों का तत्त्वार्थवार्तिक में विवेचन है, शेष का नहीं, जो संक्षेप से निम्न प्रकार है—

(१) **उत्पादपूर्व**—काल, पुद्गल, जीव आदि द्रव्यों का जब जहाँ और जिस पर्याय से उत्पाद होता है, उसका वर्णन है।

(२) **अग्रायणी पूर्व**—क्रियावादियों की प्रक्रिया और अङ्गादि के स्व-समयविषय का वर्णन है।

(३) **वीर्यप्रवाद पूर्व**—छद्मस्थ और केवली की शक्ति, सुरेन्द्र और दैत्येन्द्र की ऋद्धियां, नरेन्द्र, चक्रवर्ती और बलदेव की सामर्थ्य तथा द्रव्यों के लक्षण हैं।

(४) **अस्तिनास्तिप्रवाद पूर्व**—पाँच अस्तिकायों का अर्थ तथा नयों का अनेक पर्यायों के द्वारा "अस्ति-नास्ति" का विचार। अथवा छहों द्रव्यों का भावाभाव-विधि से, स्व-पर-पर्याय से, अर्पित-अनर्पितविधि से विवेचन है।

(५) **ज्ञानप्रवाद पूर्व**—पाँचों ज्ञानों तथा इन्द्रियों का विवेचन है।

(६) **सत्यप्रवाद पूर्व**—वचनगुप्ति, वचनसंस्कार के कारण, वचनप्रयोग, बारह प्रकार की भाषायें, दस प्रकार के सत्य तथा वक्ता के प्रकारों का वर्णन है।

(७) **आत्मप्रवाद पूर्व**—आत्मा के अस्तित्व, नास्तित्व, नित्यत्व, अनित्यत्व, कर्तृत्व, भोक्तृत्व आदि धर्मों का तथा छः प्रकार के जीवों के भेदों का सयुक्तिक विवेचन है।

(८) **कर्मप्रवाद पूर्व**—कर्मों की बन्ध, उदय, उपशम आदि दशाओं का तथा उनकी स्थिति आदि का वर्णन है।

(९) **प्रत्याख्यानप्रवाद पूर्व**—व्रत, नियम, प्रतिक्रमण, प्रतिलेखन, तप, कल्पोपसर्ग, आचार, प्रतिमा आदि का तथा मुनित्व में कारण, द्रव्यों के त्याग, आदि का वर्णन है।

(१०) **विद्यानुवाद पूर्व**—समस्त विद्याएँ (अंगष्ठप्रसेना आदि ७०० अल्पविद्याएँ और महारोहिणी आदि ५०० महाविद्याएँ), अन्तरिक्ष आदि आठ महा निमित्त, उनका विषय, लोक (रज्जुराशि विधि, क्षेत्र, श्रेणी, लोकप्रतिष्ठा), समुद्घात आदि का विवेचन है।

(११) **कल्याणनामधेय पूर्व**—रवि, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र और तारागणों का गमन, शकुन व्यवहार, अर्हत्, बलदेव, वासुदेव, चक्रवर्ती आदि के गर्भावतरण आदि -महाकल्याणकों का वर्णन है।

(१२) **प्राणावाय पूर्व**—कायचिकित्सा, अष्टाङ्ग आयुर्वेद, भूतिकर्म, जाङ्गुलिप्रक्रम (इन्द्रजाल), प्राणापान-विभाग का वर्णन है।

(१३) **क्रियाविशाल पूर्व**—लेख, ७२ कलायें, ६४ स्त्रियों के गुण, शिल्प, काव्य गुण, दोष, क्रिया, छन्दोविचितिक्रिया और क्रियाफलभोक्ता का विवेचन है।

(१४) **लोकबिन्दुसार पूर्व**—आठ व्यवहार, चार बीज, परिकर्म, राशि (गणित) तथा समस्त श्रुत-सम्पत्ति का वर्णन है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. **धवला में**[1]—अनेक दृष्टियों का वर्णन होने से "दृष्टिवाद" यह गुण नाम है। अक्षर, पद-संघात, प्रतिपत्ति और अनुयोगद्वार की अपेक्षा यह संख्यात् संख्या प्रमाण है और अर्थ की अपेक्षा अनन्त संख्या प्रमाण है। इसमें तदुभय-वक्तव्यता है।

इसमें कौत्कल, कण्ठेविद्धि, कौशिक हरिश्मश्रु मांधपिक, रोमश, हारीत, मुण्ड, आश्वलायन आदि क्रियावादियों के १८० मतों का; मरीचि, कपिल, उलूक, गार्ग्य, व्याघ्रभूति, वाद्वलि, माठर, मौद्गलायन आदि अक्रियावादियों के ८४ मतों का; शाकल्य, वल्कल, कुथुमि, सात्यमुग्रि, नारायण, कण्व, माध्यन्दिन, मोद, पैप्पलाद, वादरायण, स्वेष्टकृत, ऐतिकायन, वसु, जैमिनी आदि अज्ञानवादियों के ६७ मतों का; वशिष्ठ, पाराशर, जतुकर्ण, वाल्मीकि, रोमहर्षणी, सत्यदत्त, व्यास, एलापुत्र, औपमन्यु, ऐन्द्रदत्त, अयस्थूण आदि वैनयिकवादियों के ३२ मतों का वर्णन तथा उनका निराकरण है। कुल मिलाकर ३६३ मतों का वर्णन है।

दृष्टिवाद के ५ अधिकार हैं—परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत और चूलिका।

परिकर्म—परिकर्म के ५ भेद हैं—चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, द्वीपसागरप्रज्ञप्ति और व्याख्याप्रज्ञप्ति। (१) **चन्द्रप्रज्ञप्ति** में चन्द्रमा की आयु, परिवार, ऋद्धि, गति और बिम्ब की ऊँचाई का वर्णन है। (२) **सूर्यप्रज्ञप्ति** में सूर्य की आयु, भोग, उपभोग, परिवार, ऋद्धि, गति, बिम्ब की ऊँचाई, दिन, किरण और प्रकाश का वर्णन है। (३) **जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति** में जम्बूद्वीपस्थ भोगभूमि और कर्मभूमि के मनुष्यों, तिर्यञ्चों, पर्वत, द्रह, नदी, वेदिका, वर्ष, आवास और अकृत्रिम जिनालयों का वर्णन है। (४) **द्वीपसागरप्रज्ञप्ति** में उद्धारपल्य से द्वीप और सागर के प्रमाण का द्वीप-सागरान्तर्गत अन्य पदार्थों का वर्णन है। (५) **व्याख्याप्रज्ञप्ति** में रूपी अजीवद्रव्य (पुद्गल), अरूपी अजीवद्रव्य (धर्म, अधर्म, आकाश और काल), भव्यसिद्ध और अभव्यसिद्ध जीवों का वर्णन है। इनके पदों का पृथक्-पृथक् पदप्रमाण भी बताया गया है।

सूत्र—इसमें ८८ लाख पदों के द्वारा जीव अबन्धक ही है, अलेपक ही है, अकर्ता ही है, अभोक्ता ही है, निर्गुण ही है, सर्वगत ही है अणुप्रमाण ही है, नास्तिस्वरूप ही है, अतिस्वरूप ही है, पृथिवी आदि पाँच भूतों के समुदायरूप से उत्पन्न होता है, चेतना-रहित है, ज्ञान के बिना भी सचेतन है, नित्य ही है, अनित्य ही है, इत्यादि रूप से आत्मा का [पूर्वपक्ष के रूप में] वर्णन है। त्रैराशिकवाद, नियतिवाद, विज्ञानवाद, शब्दवाद, प्रधानवाद, द्रव्यवाद और पुरुषवाद का भी वर्णन है। 'कहा भी है' के द्वारा एक गाथा उद्धृत है—'सूत्र के ८८ अधिकारों में से केवल चार अधिकारों का अर्थनिर्देश मिलता है—अबन्धक, त्रैराशिकवाद, नियतिवाद और स्वसमय।'[2]

प्रथमानुयोग—इसमें ५ हजार पदों के द्वारा पुराणों का वर्णन किया गया है। कहा भी है—जिनवंश और राजवंश से सम्बन्धित १२ पुराणों का वर्णन है। जैसे—अर्हन्तों (तीर्थङ्करों), चक्रवर्तियों, विद्याधरों, वासुदेवों (नारायणों-प्रतिनारायणों), चारणों, प्रज्ञाश्रमणों, कुरुवंश, हरिवंश, इक्ष्वाकुवंश, काश्यपवंश, वादियवंश और नाथवंश।

---

१. धवला १.१.२, पृ० १०८-१२३।

२. धवला १.१.२, पृ० ११३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूर्वगत—९५ करोड़ ५० लाख और ५ पदों में उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य आदि का वर्णन है। उत्पाद पूर्व आदि १४ पूर्वों की विषयवस्तु का वर्णन प्रायः तत्त्वार्थवार्तिक से मिलता है परन्तु यहाँ विस्तार से कथन है तथा पदादि की संख्या का भी उल्लेख है।

चूलिका—जलगता, स्थलगता, मायागता, रूपगता और आकाशगता के भेद से चूलिका के ५ भेद हैं। (१) **जलगता** में जलगमन और जलस्तम्भन के कारणभूत मन्त्र, तन्त्र और तपश्चर्या आदि का वर्णन है। (२) **स्थलगता** में भूमिगमन के कारणभूत मन्त्र, तन्त्र और तपश्चर्या आदि का वर्णन है। वास्तुविद्या और भूमिसम्बन्धी शुभाशुभ कारणों का भी वर्णन है। (३) **मायागता** में इन्द्रजाल आदि का वर्णन है। (४) **रूपगता** में सिंह, घोड़ा, हरिण आदि के आकाररूप से परिणमन करने के कारणभूत मन्त्र, तन्त्र और तपश्चर्या का वर्णन है। चित्रकर्म, काष्ठ, लेप्यकर्म, लेनकर्म आदि के लक्षणों का भी वर्णन है। (५) **आकाशगता** में आकाशगमन के कारणभूत मन्त्र, तन्त्र और तपश्चरण का वर्णन है। सभी चूलिकाओं का पद-प्रमाण २०९८९२०० × ५ = १०४९४६००० है।

३. **जयधवला में**[1]—दृष्टिवाद नाम के १२वें अङ्गप्रविष्ट में ५ अर्थाधिकार हैं—परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत और चूलिका। **परिकर्म** के ५ अर्थाधिकार हैं—चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, द्वीपसागरप्रज्ञप्ति और व्याख्याप्रज्ञप्ति। **सूत्र** में ८८ अर्थाधिकार हैं परन्तु उनके नाम ज्ञात नहीं हैं क्योंकि वर्तमान में उनके विशिष्ट उपदेश का अभाव है।[2] **प्रथमानुयोग** में २४ अर्थाधिकार हैं क्योंकि २४ तीर्थङ्करों के पुराणों में सभी पुराणों का अन्तर्भाव हो जाता है।[3] **चूलिका** में ५ अर्थाधिकार हैं—जलगता, स्थलगता, मायागता, रूपगता और आकाशगता।[4] **पूर्वगत** के १४ अर्थाधिकार हैं—उत्पादपूर्व आदि धवलावत्। प्रत्येक पूर्व के क्रमशः १०, १४, ८, १८, १२, १२, १६, २०, ३०, १५, १०, १०, १०, १० वस्तुएँ (महाधिकार) हैं। प्रत्येक वस्तु में २०-२० प्राभृत (अवान्तर अधिकार) हैं और प्रत्येक प्राभृत में २४-२४ अनुयोगद्वार हैं। पृ० २३ पर यह लिखा है कि १४ विद्यास्थानों (१४ पूर्वों) के विषय का प्ररूपण जानकर कर लेना चाहिए[5] परन्तु पृष्ठ १२८-१३६ पर इनके विषय का प्ररूपण किया गया है जो प्रायः धवला से मिलता है।

४. **अंगप्रज्ञप्ति में**[6]—इसमें ३६३ मिथ्यावादियों की दृष्टियों का निराकरण होने से इसे दृष्टिवाद कहा गया है। पदों की संख्या १०८६८५६००५ है। दृष्टिवाद के ५ प्रकार हैं—परिकर्म, सूत्र, पूर्व, प्रथमानुयोग और चूलिका। यद्यपि यहाँ पर पूर्व को प्रथमानुयोग के पहले लिखा है परन्तु विषय-विवेचन करते समय पूर्वों के विषय का विवेचन प्रथमानुयोग के बाद किया है। इसमें सूत्र के ८८ लाख पद कहे हैं तथा इसे मिथ्यादृष्टियों के मतों का विवेचक कहा है। कालवाद, ईश्वरवाद, नियतिवाद आदि को नयवाद कहा है। इसका आधार धवला और जयधवला है।

---

१. जयधवला गाथा १, पृ० २३, १२०-१३८।
२. वही पृ० १३७।
३. विस्तार के लिए देखें, वही, पृ० १२६।
४. वही पृ० १२०-१२८।
५. एदेसिं चोद्दसविज्जाट्ठाणाणं विसयपरूवणा जाणिय कायव्वा।—जयधवला गाथा १, पृ० २३।
६. अंगप्रज्ञप्ति गाथा ७१-७६ तथा आगे भी, पृ० २७१-३०४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(ग) वर्तमान रूप—

वर्तमान में यह आगम अनुपलब्ध है। दिगम्बरों के अनुसार द्वितीय अग्रायणीपूर्व के चयन-लब्धि नामक अधिकार के चतुर्थ पाहुड नामक कर्म-प्रकृति के आधार पर षट्खण्डागम की तथा पंचम ज्ञानप्रवादपूर्व के १०वें वस्तु-अधिकार के अन्तर्गत तीसरे पेज्जदोसपाहुड से कषायपाहुड की रचना हुई हैं जिन पर क्रमशः धवला और जयधवला टीकाएँ उपलब्ध हैं।

(घ) तुलनात्मक विवरण—

यद्यपि वर्तमान में इसके अनुपलब्ध होने से इसकी तुलना करना संभव नहीं है फिर भी प्राप्त उल्लेखों से ज्ञात होता है कि इसमें स्वसमय और परसमय की सभी प्रकार की प्ररूपणायें थीं। ग्रन्थ बहुत विशाल था तथा १४ पूर्वों के कारण इस ग्रन्थ का बहुत महत्त्व था। पूर्ववेत्ताओं के क्रमशः ह्रास होने से यह ग्रन्थ लुप्त हो गया। उभय परम्पराओं में इसके क्रमशः क्षीण होने की परम्परा के उल्लेख उपलब्ध हैं। स्थानाङ्ग को छोड़कर उभय-परम्पराओं में इसके ५ प्रमुख भेद बतलाए गए हैं। दिगम्बर परम्परा में तृतीय स्थान प्रथमानुयोग का है और चतुर्थ स्थान पूर्वगत का है जबकि श्वेताम्बर परम्परा में तृतीय स्थान पूर्वगत का है और चतुर्थ स्थान अनुयोग का। दिग० अङ्गप्रज्ञप्ति की कारिका में यद्यपि "पूर्व" का उल्लेख श्वे० की तरह अनुयोग के पहले किया है परन्तु विवेचन बाद में ही किया है। स्थानाङ्ग में चूलिका को छोड़कर ४ भेद गिनाए हैं। परिकर्म के भेदों की संख्या तथा विषयविवेचन उभयपरम्पराओं में भिन्न-भिन्न है। सूत्र के ८८ भेद या अधिकार दोनों परम्पराओं ने माने हैं। परन्तु धवला में केवल चार भेदों को गिनाया है और शेष को अज्ञात कहा है। समवायाङ्ग और नन्दी में इनके ८८ भेदों को गिनाया गया है। समवायाङ्ग और नन्दी में अनुयोग के दो भेद किए हैं परन्तु धवलादि में इसे प्रथमानुयोग कहा है और उसके दो भेदों का कोई उल्लेख नहीं किया है। पूर्वों की संख्या दोनों ने १४ स्वीकार की है परन्तु श्वे० ने 'कल्याणप्रवाद' और 'प्राणावायप्रवाद' पूर्व को क्रमशः 'अबन्ध्य' और 'प्राणायुः' कहा है। चूलिका के ५ भेद दिगम्बरों ने किये हैं जबकि ऐसा समवायाङ्ग आदि में नहीं है। समवायाङ्ग और नन्दी में प्रथम चार पूर्वों की ही चूलिकायें मानी गई हैं। स्थानाङ्ग में दृष्टिवाद के १० नामों का उल्लेख है तथा पूर्वों के ज्ञाताओं का भी उल्लेख मिलता है, परन्तु दृष्टिवाद के ५ भेदों का उल्लेख नहीं मिलता है। जयधवला में पूर्वों के १४ भेदों का कथन करके लिखा है कि इन १४ विद्यास्थानों की विषयप्ररूपणा जानकर कर लेना चाहिए। तत्त्वार्थवार्तिक में दृष्टिवाद के ५ भेद तो गिनाए हैं परन्तु विवेचन केवल पूर्वों का ही किया है विधिमार्गप्रपा में इसे उच्छिन्न कहकर इसके विषय में कुछ भी नहीं कहा है।

उपसंहार—

श्वेताम्बर परम्परानुसार ११ अङ्ग-ग्रन्थों के उपलब्ध संस्करण वीर नि० सं० ९८० में बलभी में हुई देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण की अध्यक्षता में अंतिमरूप से लिपिबद्ध किए गए थे। श्रुतपरम्परा से प्राप्त ये ग्रन्थ अपने मूलरूप में यद्यपि पूर्ण सुरक्षित नहीं रह गए थे परन्तु इन्हें सुरक्षित रखने के उद्देश्य से जिसे जो कुछ याद था उसका संकलन इस वाचना में किया गया था। स्थानाङ्ग, समवायाङ्ग और नन्दी में इन अंग ग्रन्थों की जो विषय-वस्तु प्रतिपादित की गयी है उसका उपलब्ध सभी अङ्ग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रन्थों के साथ पूर्ण मेल नहीं है। इससे ज्ञात होता है कि वलभीवाचना के बाद भी कुछ ग्रन्थ मूल रूप से सुरक्षित नहीं रह सके और जो सुरक्षित रहे भी उनमें भी कई संशोधन और परिवर्द्धन हो गए। दृष्टिवाद का संकलन क्यों नहीं किया गया जबकि उसकी विस्तृत विषय-वस्तु समवायाङ्ग और नन्दी में उपलब्ध है। स्थानाङ्ग में भी दृष्टिवाद के कुछ संकेत मिलते हैं। समवायाङ्ग और नन्दी में कहीं भी उसके उच्छिन्न होने का संकेत नहीं है अपितु सभी अंगों को हिन्दुओं के वेदों की तरह नित्य बतलाया है। विधिमार्गप्रपा जो १३-१४ वीं शताब्दी की रचना है उसमें अवश्य दृष्टिवाद को व्युच्छिन्न बतलाकर उसकी विषयवस्तु की चर्चा नहीं की गई है। विधिमार्गप्रपा के लेखक के समक्ष वर्तमान आगम उपलब्ध रहे हैं जिससे उसमें प्रतिपादित विषयवस्तु का उपलब्ध आगमों से प्रायः मेल बैठ जाता है। यद्यपि वह नन्दी पर आधारित है परन्तु उसमें पूर्णरूप से नन्दी का आश्रय नहीं लिया गया है। समवायाङ्ग के १०० समवायों और श्रुतावतार के सन्दर्भ में विधिमार्गप्रपा एकदम चुप है, जबकि स्थानाङ्ग के १० स्थानों का स्पष्ट उल्लेख करता है। समवायाङ्ग और नन्दी में इन दोनों बातों का स्पष्ट उल्लेख है। इससे समवायाङ्ग की विषयवस्तु विधिमार्गप्रपाकार के समक्ष थी या नहीं। यह चिन्त्य है।

दिगम्बर परम्परानुसार वीर नि० सं० ६८३ के बाद श्रुत-परम्परा का उच्छेद हो गया परन्तु दृष्टिवाद के अंशांश के ज्ञाताओं के द्वारा रचित षट्खण्डागम और कषायपाहुड ये दो ग्रन्थ लिखे गये। पश्चात् शक सं० ७०० में उन पर क्रमशः धवला और जयधवला टीकायें लिखी गयीं। इन ग्रन्थों में तथा इनके पूर्ववर्ती ग्रन्थ तत्त्वार्थवार्तिक में द्वादश अंगों की जो विषयवस्तु मिलती है उससे उपलब्ध आगमों का पूर्ण मेल नहीं है। कई स्थलों पर तो श्वेताम्बर अङ्गों में बतलाई गई विषयवस्तु से भी पर्याप्त अन्तर है। पदसंख्या आदि में सर्वत्र साम्य नहीं है। दृष्टिवाद की विषय-वस्तु बतलाते समय जयधवला में स्पष्ट लिखा है कि "सूत्र" के ८८ भेद ज्ञात नहीं हैं क्योंकि इनका विशिष्ट उपदेश नहीं पाया जाता है।[1] धवला में मात्र ४ भेदों का कथन किया गया है।[2] इससे ज्ञात होता है कि उनके पास शेष अङ्गज्ञान की परम्परा कुछ न कुछ अवश्य रही है अन्यथा वे "सूत्र के ८८ भेदों के विशिष्ट उपदेश नहीं पाये जाते" ऐसा नहीं लिखते। समवायाङ्ग और नन्दी में इसके जो ८८ भेद गिनाए हैं वे भिन्न प्रकार के हैं।

ग्यारह अङ्ग ग्रन्थों का दृष्टिवाद से पृथक् उल्लेख दोनों परम्पराओं में प्राप्त होता है। दोनों ने दृष्टिवाद में स्वसमय और परसमय-सम्बन्धी समस्त विषय-प्ररूपणा मानी है। ग्यारह अङ्गों को दिगम्बरों ने स्वसमय-प्ररूपक कहा है[3]। केवल सूत्रकृताङ्ग को परसमय का भी प्ररूपक बतलाया है। श्वेताम्बरों ने सूत्रकृताङ्ग, स्थानाङ्ग, समवायाङ्ग और व्याख्याप्रज्ञप्ति को भी समान रूप से स्वसमय और परसमय का प्ररूपक स्वीकार किया है। जयधवला में उक्त ज्ञाताधर्म की १९ कथायें

---

१. "सुत्ते अट्ठासीदि अत्थाहियारा। ण तेसिं णामाणि जाणिज्जंति, संपहि विसिट्ठुवएसाभावादो।
—जयधवला गाथा १, पृ० १३७

२. उत्तं च—
अट्ठासी-अहियारेसु चउण्हमहियारणमत्थणिद्देसो।
पढमो अबंधयाणं विदियो तेरासियाण बोद्धव्वो॥ ७६॥
तदियोय णियइ–पक्खे हवइ चउत्थो ससमयम्मि।—धवला १.१.२ पृ० ११३

३. जेणेवं तेणेक्कारसण्हमंगाणं वत्तव्वं ससमओ।—जयधवला गाथा १, पृ० १२०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संभवतः उसके १९ अध्ययनों की बोधक हैं जो बहुत महत्त्वपूर्ण कथन है। इसी प्रकार प्रतिक्रमण ग्रन्थत्रयी में सूत्रकृताङ्ग के २३ अध्ययनों के नाम आए हुए है जो समवायाङ्गोक्त अध्ययनों से पर्याप्त साम्य रखते हैं। उपलब्ध ६ से ११ तक के अङ्गों में कथा की प्रधानता है। व्याख्याप्रज्ञप्ति में गौतम, अग्निभूति और वायुभूति के नाम आना और सुधर्मा का नाम न होना चिन्त्य है। इसी प्रकार प्रश्न-व्याकरण में जम्बू स्वामी का नाम तो है परन्तु सुधर्मा का नाम नहीं है। प्रश्नव्याकरण की मंगलयुक्त नवीन शैली है तथा ६ से ११ तक के अङ्गों की उत्थानिका एक जैसी अन्यपुरुष-प्रधान है। इससे इनको रचना परवर्ती काल में हुई है यह निर्विवाद सत्य है। यह सम्भव है कि इनमें कुछ प्राचीन रूप सुरक्षित हों। स्थानाङ्ग और समवायाङ्ग की जो विषयवस्तु दिग० धवला आदि में मिलती है और जो वर्तमान ग्रन्थों में उपलब्ध है उसमें बहुत अन्तर है। संभव है ये भी परवर्ती रचनाएँ हों। इनमें ऐसे भी बहुत से लौकिक विषय आदि आ गये हैं जिनका इनमें समावेश करना अपेक्षित नहीं था। वर्तमान प्रश्नव्याकरण प्रश्नों के उत्तर के रूप में नहीं है। विधिमार्गप्रपा जो बहुत बाद की रचना है उसमें स्थानाङ्ग के १० स्थानों का तो उल्लेख है परन्तु समवायाङ्ग के १०० समवायों और श्रुतावतार की चर्चा तक नहीं है। नन्दी आदि अङ्ग बाह्य-ग्रन्थों का उल्लेख होने से भी समवायाङ्ग बहुत बाद की रचना सिद्ध होती है। अन्तकृद्दशा में जो वर्णन मिलता है वह स्थानाङ्ग आदि के कथन से मेल नहीं रखता है। यही स्थिति ज्ञाताधर्मकथा, उपासकदशा आदि की है।

इन सभी कारणों से ज्ञात होता है कि उपलब्ध आचाराङ्ग और सूत्रकृताङ्ग के प्रथम श्रुतस्कन्ध अधिक प्राचीन हैं। शेष में परवर्ती आचार्यों के कथनों का अधिक समावेश है। इतना होने पर भी उपलब्ध आगम हमारे लिए बहुत उपयोगी हैं। दिगम्बरों ने इनको सुरक्षित करने का प्रयत्न न करके बहुत बड़ी भूल की है। सभी ग्रन्थों का पृथक्-पृथक् समालोचन करके इनकी समयसीमा तथा विषय-वस्तु की मूलरूपता का विस्तार से निर्धारण अपेक्षित है। जो उभय परम्परा को मान्य हो।

●

रीडर,
संस्कृत विभाग,
का० हि० वि० वि०, वाराणसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org